॥ ओ३म् ॥

दहला

पौराणिकों द्वारा लिखित भ्रामक पुस्तिका "नहले पर दहले"

का

मुँह तोड़ उत्तर :

द्वारा

शान्ति प्रकाश शास्त्रार्थ महारथी

—प्रकाशक—

जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली-५

॥ ओ३म् ॥

दहला पागल हो गया......

पौराणिक स्वामी केशवपुरी के अनर्गल प्रलाप

'नहले पर दहला'

का

युक्तियुक्त उत्तर

लेखक :

शास्त्रार्थ महारथी **पं० शान्तिप्रकाश जी** महामहो[illegible]

भूमिका लेखक :

श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, काव्यव्याकरणतीर्थ, महामहोपदेशक, संसद् सदस्य,
प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा,
उत्तरप्रदेश

हम [illegible] करेंगे !!

आर्यसमाज नानपारा के उत्सव पर जब पं० शांतिप्रकाश जी ने मुझे 'नहले पर दहला' पुस्तक दिखाई, तो मेरे मन को भारी ठेस पहुंची। अपने के सनातनधर्मी कहने वाले बन्धुओं की कृतघ्नता देख हृदय रो उठा। वस्तुत युग प्रवर्तक देव दयानन्द को गालियां देकर स्वामी केशवपुरी ने आर्यजाति की महान् गौरव-परम्परा पर कुठाराघात किया है।

हम इसे एक पागल का प्रलाप भी समझ लेते किन्तु इसमें जब स्वामी निरंजनदेव तीर्थ (पुरी के गद्दीधारी शंकराचार्य) का आशीर्वाद भी पढ़ा तो इसे सुनियोजित कार्य समझने पर हमें बाध्य होना पड़ा। ये वही शंकराचार्य हैं जिनकी बुद्धिमत्ता से गो-रक्षा आन्दोलन असफल हुआ।

जिस ऋषि दयानन्द ने मरते भारत को पुनः जीवन दिया, जिसने आर्य जाति की विधर्मियों से रक्षा की, जिसने अन्धकार में प्रकाश दिखा हमें चलना सिखाया, उस महापुरुष पर कीचड़ उछाल स्वामी केशवपुरी और श्री निरंजन देव तीर्थ को क्या मिला, यह तो वे ही जानें, हां इससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत के दुर्दिन अभी समाप्त नहीं हुए।

ऋषि दयानन्द की स्थिति सूर्य की-सी है, उन पर धूल डालने वाले समझ लें कि वे अपनी इन छोटी २ हरकतों से ऋषि को नहीं, अपने को ही गिरा रहे हैं। संसार के सभी महापुरुषों ने एक स्वर से महर्षि को श्रद्धांजलियां अर्पित कर अपने को धन्य माना है, आपका यह कुकृत्य कितना जघन्य है, यह एकान्त में बैठ स्वयं सोचिए।

विचारिए तो सही कि एक महापुरुष को, ऐसे महापुरुष को जिसके कारण आज राम, कृष्ण, वेदशास्त्र का नाम अवशिष्ट है इस तरह अपशब्द कहने का पाप कर आपने अपने को कहां पहुँचाया है।

हम परम पिता परमात्मा से आपकी सद्बुद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रभु आपको ऐसी प्रेरणा दे कि आप भूला मार्ग छोड़कर सच्चे वेद की राह पर चल सकें।

ऐसे में जब ईसाई-मुसलमान-कम्यूनिस्ट हिन्दू (आर्य) जाति को समाप्त करने में लगे हैं, आपने जो यह किया, इतिहास आपको क्षमा न करेगा। प्रभु कृपा करें कि आप सभी पौराणिक धर्मनेता वेदशास्त्र और आर्य परम्पराओं की रक्षा के लिए महर्षि के बताए मार्ग पर चल सकें—

हम उस दिन की प्रतीक्षा करेंगे।

—भारतेन्द्र नाथ

हिन्दुओं की अवस्था पर दया कीजिये श्री [illegible]!

ऋषि दयानन्द वह महापुरुष था जो मतमतान्तरों के मतभेदों को समाप्त करके इनके आधारभूत शाश्वत सिद्धान्तों (जिनको कि सत्य सनातन धर्म के नाम से पुकारा जा सकता है) के आधार पर सारे मानव समाज को एकता के सूत्र में आबद्ध करना चाहता था। धार्मिक इतिहास में सम्भवतः वह प्रथम सर्वधर्मसम्मेलन था जो ऋषि के प्रयत्न के परिणामस्वरूप दिसम्बर सन् १८७० में रानी विक्टोरिया के समय में लार्ड लिटन की व्यवस्था में सम्पन्न होने वाले दिल्ली दरबार के समय आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्रराय, बाबू केशवचन्द्र सेन, इन्द्रमन मुरादाबादी, सर सैयद अहमद खां, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में दृढ़ एकमत्य के लिए ऋषि दयानन्द ने एक धर्म विश्वास पर बल दिया और कहा कि हमारी धार्मिक मान्यतायें यदि एक हों तो फिर हममें एकता और अभिन्नता स्वतः उत्पन्न हो जावेगी। किन्तु देश का दुर्भाग्य कि ग्रन्थ नेता इस सुझाव की सराहना करते हुए भी उसे ग्रहण करने का साहस न कर सके।

थोड़ा मनन करके देखें तो विचारों की एकता के लिए इससे उत्तम कोई ग्रन्थ मार्ग नहीं है। उदाहरण के लिए—देखना चाहिये कि कौनसा वह विशेष संदेश था जो इस्लाम ने आकर दिया और उससे पहले के ग्रन्थों में वह विद्यमान था या नहीं? तो इसका यही उत्तर मिलेगा कि ईश्वर एक है और वही उपास्य है—यह संदेश इस्लाम की देन है। अब इस बात को वेद में खोजिये तो वहां सैंकड़ों मन्त्रों में यह स्पष्ट उपदेश है कि वह प्रभु एक है और वही उपासना के योग्य है। **एक एव नमस्यविक्ष्वीड्यः**। फिर तो परिणाम यह निकला कि यह संदेश तो पहले भी विद्यमान था, केवल लोग भूल गये थे अतः पृथक् से इस्लाम की आवश्यकता नहीं हुए, कृतज्ञता ज्ञापन के लिए

स्मरण कराने वाले के नाम का ऐतिहासिक महत्व अवश्य है और उसकी सराहना होनी चाहिए। यही बात ईसाइयत के लिए है। ईसाइयत का मुख्य संदेश ईश्वर से पिता का सम्बन्ध और इसी आधार पर मानव समाज में भ्रातृभाव की (Fratherhood of God and brotherhood of men) स्थापना है। इसका भी विश्लेषण कीजिये कि इस संदेश की सत्ता वेद में है — अथवा नहीं। तो वेद में इसके प्रतिपादक मन्त्र भी बहुत बड़ी संख्या में हैं। जिनमें भगवान् को पिता, न केवल पिता अपितु माता भी कहा गया है। त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ और अज्येष्ठासो अकनिष्ठास तुम में न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। तुम सभी समान और भाई-भाई हो। तो पता चला कि यह संदेश भी कोई नया नहीं है। हां इस विस्मृत तथ्य को जिसने वहां स्मरण कराया हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए।

इस प्रकार सारे मत-मतान्तरों का विश्लेषण करेंगे तो आप पायेंगे कि वे समस्त पवित्र संदेश वेद में हैं जिनके आधार पर उक्त मतों का प्रादुर्भाव हुआ। हां, वेद के नाम पर, जिसको वेद अधर्म कहता है — अज्ञान से लोग उसे धर्म कहते हैं — उसका खण्डन होना चाहिए। बस यह था ऋषि दयानन्द का उद्देश्य और इसी के लिए वे आजीवन प्रयत्न करते रहे।

ऋषि ने बलपूर्वक कहा कि कोई नया मत और सम्प्रदाय चलाना मुझे अभीष्ट नहीं है अपितु मैं उसी सनातन धर्म को मानता हूँ जिसे ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त सब मानते और प्रचार करते आये हैं।

अतः ऋषि द्वारा स्थापित आर्यसमाज कोई धर्म नहीं है — अपितु वह जिस धर्म को मानता है — वह सत्य सनातन वैदिक धर्म है। देखना यह चाहिए कि सत्य सनातन अर्थात् सदा टिकने वाला धर्म कौनसा हो सकता है? तो इसकी परिभाषा वेद ने स्वयं की है कि "सनातनमेनमाहुरुतद्यः स्यात् पुनर्णवः।" अर्थात् सनातन वह हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में हो तथा वर्तमान की सभी समस्याओं के समाधान की क्षमता रखता हो जो धर्म वर्तमान समय की समस्याओं के समाधान की क्षमता नहीं रखता उसे आज के युग में जीने का कोई अधिकार नहीं है।

ऋषि दयानन्द के समय में हमारे तथाकथित सनातन धर्म की भी यही अवस्था हो गयी थी। एक ही वर्ग के होकर भी अनेक प्रकार के देवी देवों की कल्पना करके अपने देव को उत्कृष्ट और दूसरे के उपास्य देव को निकृष्ट सिद्ध करने में अपनी सम्पूर्ण योग्यता और शक्ति का व्यय कर रहे

थे। सारा पौराणिक साहित्य इस लथ्य का साक्षी है।

ऋषि दयानन्द ने पहला मोर्चा इसीके विरुद्ध लगाया और मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद का खण्डन करके वेद के आधार पर एक ईश्वर को ही उपास्यदेव बताया। यदि वैदिक ईश्वर के उपासक आर्य (हिन्दू) लोग रहे होते तो गत १००० वर्ष में उनकी ऐसी दुर्गति न हुई होती। सोमनाथ के मन्दिर को महमूद इस प्रकार ध्वस्त करके सकुशल वापस न चला गया होता। यदि जड़पूजा करते-करते हमारी बुद्धि जड़ न होगई होती। आक्रान्ता को देख कर सोमनाथ जी के सहारे बैठे रहे कि वही शत्रु को मारकर भगा देगा। राजा दाहर की सेनाएं मन्दिर के झण्डे को झुका हुआ देखकर मैदान से न भाग खड़ी होतीं यदि वे बहमों के अन्धकार में अन्धी न होतीं। इन कारणों से ऋषि ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया।

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था विकृत होकर आर्यजाति टुकड़ों में बट गई। एक विशाल और व्यवस्थित भवन टूटी-फूटी ईंटों का ढेर बनकर रह गया। इस पर भी तुर्रा यह कि वेदों के ठेकेदार धर्माचार्य कहाने वाले वेदों के विपरीत व्यवस्था दे रहे थे। वेद **यथेमांवाचं कल्याणीम्। यजु: ।।** स्पष्ट शूद्र और अति शूद्र को भी वेद पढ़ने का अधिकार दे रहा है। किन्तु वेद मूलक होने का दावेदार सनातन धर्म का क्या स्वरूप हो गया था। **श्रवणाध्ययनप्रतिषेधात् स्मृतेश्च।** वेदान्त दर्शन के इस सूत्र के भाष्य प्रसंग में आद्य शङ्कराचार्य लिखते हैं—**अथास्य वेदमुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुच्चारणे जिह्वाछेदः धारणे शरीर भेदः।** अर्थात् यदि वेद को शूद्र सुनले तो रांग और लाख से उसके कानों के छेद भरने और वेदमन्त्रों का उच्चारण करे तो जीभ काटले और वेद के अनुसार आचरण करे तो शरीर चीर दे।

धर्म केवल परलोक का साधन माने जाना लगा। धर्म के नाम पर जो काम होते थे उनका वर्तमान से और इस लोक से कोई सम्बन्ध नहीं था। होता भी कैसे? क्योंकि इस लोक को तो मानते ही मिथ्या थे। फिर मिथ्या वस्तु की रक्षा और उन्नति का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। हिन्दू धर्म में से ईसाई और मुसलमान बनते जा रहे थे और किसी को कोई चिन्ता नहीं थी।

सन् १८८१ में भारत में हिन्दुओं की संख्या कुल आबादी का ७४'८ प्रतिशत थी। सन् १८९१ में ७१'६ प्रतिशत रह गई सन् १९३१ में ६७'७ प्रतिशत रही। इस प्रकार इन ५० वर्षों में हिन्दुओं की संख्या लगभग ७ प्रतिशत घट गई। यदि इसी हिसाब से हिन्दू घटते चले जाते तो ४५ बार

की मर्दुम शुमारी में हिन्दू संसार से नष्ट हो जाते। सन् १६११ की जनसंख्या की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल हिन्दू २१ करोड़ ७६ लाख ८६ हजार ८६२ थे। वहां सन् १६२१ में २१ करोड़ ६७ लाख ३४ हजार ५८६ रह गये। अर्थात् ८३ लाख घट गये।

इन्हीं १० वर्षों में भारत के मुसलमान ६ करोड़ ६६ लाख से बढ़कर ६ करोड़ ८१ लाख होगये और १६३१ में ७ करोड़ से भी अधिक होगये। इसी प्रकार ईसाई सन् १६११ में सारे भारत में कुल ३८ लाख थे। सन् १६२१ में ४७३ लाख हुए और सन् ३१ में ६३ लाख से भी अधिक होगये। केवल पंजाब प्रान्त ही में जहां ईसाइयों की संख्या सन् १८८१ में केवल ३८७ थी। वहां सन् २१ में ३ लाख ४७ हजार ४५२ होगई। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार २४४ मनुष्य प्रतिदिन हिन्दुओं में से निकलकर ईसाई बनते थे।

अब बताइये श्री स्वामी निरञ्जनदेवजी महाराज ! हिन्दूधर्म की रक्षा केशवपुरी और माधवाचार्यजी अथवा आप कर रहे हैं अथवा आर्यसमाज कर रहा है। आपकी हालत तो यह थी कि फांसीसी यात्री बर्नियर ने जो दाराशिकोह के साथ एक बार काशी गया था—काशी के पण्डितों से पूछा—आप जिस धर्म को मानते हैं, वह कैसा है ? पण्डितों ने उत्तर दिया—वह सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बर्नियर ने दूसरा प्रश्न किया—कि क्या आप इस धर्म की दीक्षा मुझे दे सकते हैं ? पण्डितों ने उत्तर दिया—नहीं, आपके लिए वही धर्म ठीक है, जो आप मानते हैं।

तो ऋषि दयानन्द से पूर्व सनातन धर्म का यह अचेतन शरीर निश्चेष्ट पड़ा हुआ था। आर्यसमाज के प्रचार ने इसमें गति उत्पन्न की और उसका प्रमाण काशी की विद्वत् परिषद् के १० प्रस्ताव हैं जो सन् ४७ में नवाखाली के झगड़े के समय पास किये थे। उनमें से अन्तिम प्रस्ताव यह था कि नवाखाली में बलपूर्वक जिन हिन्दू स्त्री-पुरुषों को मुसलमान बनाया गया है—वे अपनी इच्छा से नहीं बने। उसमें उनका कोई दोष नहीं है। अतः उन्हें हिन्दू धर्म में पुनः लाने के लिए आर्यसमाज की शुद्धि प्रक्रिया बहुत लम्बी है। अतः हम व्यवस्था देते हैं कि गंगाजल छिड़क कर और शंख बजा कर ही उन्हें शुद्ध कर लिया जावे। यह है—जादू स्वामी दयानन्द का चाहे आप उनका नाम लें अथवा न लें। ऋषि दयानन्द की शरण में आये बिना आज की दुनियाँ में आप एक दिन भी जीवित नहीं रह सकते। आपके सनातन धर्म का विशुद्ध स्वरूप तो यह है कि जब संवत् १८६० के आश्विन मास में काशी में

एक ब्राह्मण सम्मेलन हुआ। इसकी बैठकें सात दिन तक होतीं रहीं। अनुमानतः ३०० पण्डितों ने भाग लिया और विचार विनिमय किया। बड़े संघर्ष के पश्चात् इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि रजोदर्शन के पश्चात् कन्या को वृषलीत्व प्राप्त होता है और प्रायश्चित से उसकी निवृत्ति नहीं होती। अर्थात् रजोदर्शन के पश्चात् कन्यादान अधर्म्य है। (२) उपजातियों में विवाह नहीं करना चाहिए। (३) मुसलमानों और अस्पृश्यों की अस्पृश्यता जन्म से है।'' और बात जाने दीजिए अस्पृश्यता को ही अपनी मान्यतानुसार आज के संसार में लेकर चलिए। आपको सब आटे-दाल का भाव पता चल जावेगा। कल परसों पटना के सम्मेलन में आपने कहके देख ही लिया था—फिर बकवादों की लीपापोती करते फिरे।

इसलिए श्री निरञ्जन देव जी चेतिये और हिन्दुओं की अवस्था पर दया कीजिये। **केशवदेव पुरी के संग्रह "नहले पर दहला" पर अपना आशीर्वाद देकर आपने अपने स्तर को बहुत नीचा गिरा दिया है। इस गन्दगी के ढेर को आप अपने आशीर्वाद से ढकना चाहते हैं।**

बात क्या थी? जिसका आपने बावेला मचाया, यही न कि ऋषि दयानन्द के काशी के शास्त्रार्थ को १०० वर्ष हो गये थे और आर्यसमाज उसको स्मरण करके धार्मिक जगत् में एक चेतना लाना चाहता था। यदि शास्त्रीय चर्चा सत्य निर्णय के लिए हो तो आर्यसमाज सदा इसका स्वागत करता रहा है और अब भी करता है। आपने शास्त्रचर्चा के लिए जो भी निमन्त्रण दिया आर्यसमाज ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। आप आर्यसमाज के पण्डाल में आने को तैयार नहीं थे। एक तीसरे स्थान एक हाईस्कूल का सुझाव आपने दिया आर्यसमाज ने वह भी स्वीकार कर लिया। आपने फिर उसके लिए भी बहाने बनाये और उसे टाल दिया। अन्त में अन्तिम दिन जबकि आर्यसमाज के शिविर में एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर बहुत से लोग उसकी अन्त्येष्टि के लिए गये हुए थे तथा पण्डाल में सांयकाल की संध्या की तैयारी हो रही थी—तब आप लोग बिना निश्चय और पूर्व सूचना के अचानक करते हुए आर्यसमाज के पण्डाल में आये। यदि आपके मन में शास्त्रार्थ की थी तो तीन दिन तक क्यों बगलें झाँकते रहे? आर्यसमाज ने फिर भी आपकी चुनौती को स्वीकार किया। किन्तु परिस्थिति की गम्भीरता को देखकर अधिकारियों ने उसको अनुमति नहीं दी और सभा समाप्ति की घोषणा

करदी। अब कोई बताये इसमें आर्यसमाज का क्या दोष है ?

धर्म के ठेकेदारों ! आर्य सभ्यता और संस्कृति जितने खतरे में आज है उतने संकट में पहले कभी नहीं थी। हमारे साहित्य भण्डारों को आक्रान्ताओं ने आग लगा दी तो हमारे मेधावी पूर्वजों ने वेद और शास्त्रों को कंठ करके और मौखिक शिक्षा देकर उसकी रक्षा की। किन्तु आज की विषाक्त शिक्षा ने धर्म के प्रति श्रद्धा के अंकुर ही नष्ट कर दिये। आज के द्विवेदी, त्रिवेदी और चतुर्वेदी ब्राह्मणों के घरों में वे कालिज के ग्रेजुएट हैं जिन्होंने वेद कभी देखे नहीं और न देखने की मन में उत्कंठा है। क्या पढ़ा-लिखा मुसलमान कोई आपको ऐसा मिलेगा जिसने कुरान न देखी हो और क्या पढ़ा लिखा ईसाई आपको ऐसा मिलेगा जिसने बाइबिल न देखी हो किन्तु हिन्दू आपको ऐसे अभागे लाखों मिल जावेंगे। अतः इस संस्कृति के जीवन का एक और एक ही मार्ग है और वह है ऋषि दयानन्द द्वारा समुद्‌धृत वैदिक धर्म का विशुद्ध स्वरूप। मैं पं० शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी व जन.ज्ञान-प्रकाशन को बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस प्रकार की उच्छृंल विचार वात्या का बहुत संयत भाषा में परिहार किया है। इसे पढ़कर बुद्धि जीवियों को कुछ तो सन्तोष होगा कि अन्ततः धार्मिक क्षेत्र में भी कुछ विचारशील व्यक्ति हैं जो कठमुल्लेपने को छोड़कर उहापोह द्वारा तथ्य मंथन करके पाठकों के चिन्तन के लिए कुछ सामग्री उपस्थित करते हैं।

आज आवश्यकता है कि हम सत्य के प्रकाश में असत्य के त्याग के लिए सदा तत्पर रहें। असत्य का ग्रहण तो सर्वनाश को ही आमंत्रित कर सकता है।

५. ६. ७०

—शिव कुमार शास्त्री (संसद सदस्य)
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तरप्रदेश
५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ।

नहले पर दहले का यथार्थ उत्तर

सनातन धर्म के एक पहरेदार स्वामी केशव पुरी ने ४८ पृष्ठ की एक पुस्तिका प्रकाशित करके आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द पर भारी विष वमन किया है। इस पुस्तक का प्रकाशन स्थल "मोर्चा सनातन धर्म का, हरिश्चन्द्र कालिज का आँगन, मेदामिन, काशी है।" यह मोर्चा आर्यसमाज के शताब्दी समारोह के विरुद्ध लगाया गया और हुल्लड़बाजी से काम लेकर आर्यसमाज शताब्दी समारोह के मंच पर कब्जा करने का यत्न किया गया तथा आर्य समाज के महोत्सव में 'जयजय राम' का कीर्तन शुरू करके शताब्दी समारोह की कार्यवाही में अनुचित खलल डाला गया। तब पुलिस ने हुल्लड़बाजों की धक्केशाही को समाप्त किया। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि पौराणिक आज से सौ वर्ष पूर्व ऋषि दयानंद को मूर्तिपूजा के विधान में एक वेद मंत्र भी न दिखा सके और हुल्लड़बाजी से ऋषि पर मिट्टी कंकरादि फेंकने शुरू कर दिये तथा अपनी जीत के गीत गाते हुए भाग गये। आज १०० वर्ष पश्चात् भी वही चाल है कि १०० वर्षों तक एक भी मूर्तिपूजा का प्रमाण वेदों से नहीं ढूंढ सके और हुल्लड़बाजी से काम लेकर सस्ती जीत की प्रसिद्धि चाह रहे हैं। अन्यथा शताब्दी महोत्सव के मुकाबले में विजय महोत्सव रखने का कोई अवसर ही न था।

(१) गालियां

गालियां देना हमारे भाईयों की पुरानी रसम है। इस छोटी सी पुस्तक में संभवतः कोई पृष्ठ गाली से खाली न होगा जिसमें आर्य समाज और ऋषि दयानंद को पानी पी-पी कर न कोसा गया हो। कुछ इस सभ्यता के नमूने यहां भी उद्धृत करता हूं। देखिये :—

(१) "यह भद्र काली क्या आर्य समाजियों की मौसी है, चाची है, दादी है या नानी है? सनातन धर्मियों की चोरी करना और उन्हीं को कोसना! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे।" पृ० ५

(२) "तब इनसे पूछिये कि सनातनियों की पूजा करते देखकर इनके पेट में शूल क्यों उठते हैं ? हम सनातनी आर्यसमाजियों जैसी मूर्खता कभी नहीं करते ।" पृ० ७

(३) "जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना ।" पृ० ७

(४) स्वामी दयानंद जी की बुद्धि का दिवाला निकल गया । पृ० ८

(५) "पतित संन्यासी" । पृ० ९ का शीर्षक

(६) "मैं स्वामी दयानंद को पतित संन्यासी घोषित करता हूं ।" पृ० ११

(७) 'अब तो हमें स्वामी जी के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है ।' पृ० १२

(८) "आगे महाशय जो (स्वामी जी) लिखते हैं ।" पृ० १३

(९) "मैं फागुन की ख्याथा ।" पृ० १४

(१०) "स्वामी दयानंद ने मुसलमानों के निकाह पर वेद का मुलम्मा चढ़ा दिया कि जिससे हिन्दुओं को मनमाना व्यभिचार का परमिट मिल जाय ।" पृ० १५

(११) दयानंद की खास पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में व्यभिचार की तालीम मौजूद है । पृ० १५

(१२) परन्तु अब तो उनके मनुष्य होने में भी सन्देह है ।" पृ० १७

(१३) "तो भी पापी पेट के भरने के लिये...... जनता को इस बात का धोका देना आर्यसमाज के लिये चुल्लु भर पानी में डूब मरने की बात है । ऐसी निर्लज्जता के कार्य करने वाली आर्यसमाज को संसार घृणा की दृष्टि से देखता है ।" पृ० ३२

(१४) "चौबे गये थे छब्बे होने, दूबे रह गये ।" पृ० ३७

(१५) "बनाने चले थे गणेश और बन गया बन्दर" इस प्रकार खूब अपने मुंह मियां मिट्ठू बने । पृ० ३८

(१६) "उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता तो इस में सूर्य का क्या दोष ।"

(१७) दयानन्द ढीठ हैं ढीठ को ढिठाई से ही हराया जा सकता है ।" पृ० ४७

(१८) दयानन्द बड़ा ढीठ और मसखरी बाज है । पृ० ४७

सनातन धर्म के पहरेदार महोदय यह गालियां न लिखते तो भी उनकी पुस्तक छपने और बिकने से न रहती । आर्यसमाज के पास गालियां नहीं, अतः मैं इन सबका उत्तर एक ही देता हूं कि

ददतु ददतु गाली गालीमन्तो भवन्तः ।
वयमपि तदभावात् [illegible] ॥
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम् ।
नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददाति ॥

शोक ! ऐसी गालियों से भरी पुस्तक के लेखक को जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य ने आशीर्वाद दिया जिनकी स्थापि में आर्यसमाज का बहुत भाग है । आर्यसमाज ने अपनी उदारता से शंकराचार्य के नेतृत्व में गौ-रक्षा सत्याग्रह में पूर्ण और सबसे अधिक योग दिया तथा आर्य सम्मेलन हैदराबाद का प्रधान बनाया । क्या यह सारी कार्यवाई उसी का पारितोषिक है ?

काशी शताब्दी में भी हमारे भाईयों ने धक्केशाही से काम लेना शुरू कर दिया । तब पुलिस ने शान्ति स्थापित की । अब शताब्दी समाप्ति के पश्चात् गालियों से भरी पुस्तकें और लेख छापने शुरू कर दिये और साथ ही संगठन की दुहाई भी देते जा रहे हैं । विचित्र प्रथा है हमारे भाईयों की ।

(२) वेदानुकूलता

पौराणिकों ने घोषणा की कि जो आर्यसमाजी "ओ३म् वाक् वाक्" और यज्ञोपवीत का मन्त्र वेद से दिखाये उसे ५००) पारितोपिक दिया जायेगा । मैं भी कहता हूँ कि जो सनातन धर्मी इन मंत्रों के नीचे यह वेद में लिखा है ऐसा दिखा दे उसे ५००) पारितोषिक दिया जायेगा । तब पण्डित जी चुप साध लेते हैं । वैदिक संध्या का अर्थ है वेदानुकूल सन्ध्या । ओ३म् वाक् वाक् के विरुद्ध कोई वेद मंत्र दिखाओ तब बात बने । ओं वाक् वाक् की वेदानुकूलता के लिये निम्न मंत्र पर ध्यान दीजिये :—

ओं वाङ् म आसन्नसो प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ॥ अथर्व० १९।६०।१-२

(३) यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत के मंत्र की वेदानुकूलता निम्न वेद मंत्र में देखिये :—

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणाकृतम् ।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणि सुते ॥ यजु० १९।३

इस मंत्र में उपनयन संस्कार का वर्णन करते हुए ईश्वरीय आज्ञा बताई है कि विद्वानों ने यज्ञ का यह रूप माना है कि उसमें जनेऊ आदि धागे की गांठ बनाकर उसे पहन कर यज्ञादि धार्मिक कार्य सम्पन्न किये जायें।

सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि क्रियंते यस्मिंस्तस्मिन् सौत्रामणिसुते । ऋषिभाष्य ।

बस पौराणिक कैम्प से इन जैसी बातों को वेद में दिखाने के बार २ चैलेंज दिये गये। जिनका उत्तर हमने बार २ वेद मंत्र दिखा कर दे दिया था। किसी में साहस हो तो इन्हें वेद विरुद्ध सिद्ध करने के लिये कोई वेद मंत्र दिखाये। क्योंकि वेदानुकूलता का अभिप्राय ही यही है कि जिस बात के विरुद्ध कोई वेद मंत्र नहीं है वह वेदानुकूल है जैसा कि मीमांसा दर्शन में स्पष्ट लिखा है कि :—

विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्। मीमांसा १।३।३

यदि किसी बात के विरुद्ध स्पष्ट वेद में लिखा हो तो उसे वेद विरुद्ध सिद्धान्त समझा जावे अन्यथा उसे वेदानुकूल माना जाय अतः शास्त्र वचन के अनुसार प्रतिवादी का कर्तव्य है कि श्रो वाक् वाक् कहने और यज्ञोपवीत पहनने के विरुद्ध वेद मंत्र उपस्थित करें। अन्यथा यह वेदानुकूल स्वतः सिद्ध है। इस पर हमने वेदमंत्र लिख कर इनकी अनुकूलता भी सिद्ध कर दी है। शर्तें लगाना और शर्त लगा कर बहाने करना यही पौराणिक शास्त्रार्थियों का काम है जिस का नमूना जनता ने काशी में देख लिया।

अब पुराणों में वेद के नाम से जो कुछ लिखा है कोई पौराणिक पंडित इनके वेदमंत्र दिखा दे अन्यथा स्वीकार करे कि यह सब कुछ मिथ्या लिखा है। देखिये :—

(१) **मंत्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबीजकः।**
ह्रीं दुर्गायैनम इति सर्वकामफलप्रदः॥८॥

ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्मखंड २७।८

सामवेद में यह मंत्र लिखा है कि :—
"ह्रीं दुर्गायै नमः"
कृपया साम वेद से दिखाईये।

(२) **ओं सर्वेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा।**
इत्येव मंत्रश्च सर्वेषां कल्पपादपः॥२७॥
सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः।२८॥

ब्रह्मवैवर्त कृष्ण जन्मखंड ७८।२७, २८

कृपया यह मंत्र सामवेद से दिखाइये तथा आपके यहां राधा गायत्री तथा गरुड़ गायत्री का भी विधान है। इन्हें वेदों से दिखाईये।

(४) यह अनोखे प्रहरी

"नहले पर दहला" नामक पुस्तक के किसी पृष्ठ पर भी मूर्तिपूजा को

वेदानुकूल सिद्ध करने के लिये कोई मत नेल्तक महोदय नहीं ला सके। इधर-उधर की बातों में पुस्तक समाप्त करदी और गालियों का पुलन्दा तैयार कर दिया। गालियाँ देने से सिद्धान्त की सच्चाई कैसे सिद्ध होगी? पुस्तक में परस्पर विरोध तथा विषयान्तर की भर मार है।

ऋषि दयानंद के विरुद्ध किसी अंग्रेज या मुसलमान से मिथ्या निर्णय लिखवा लेना क्या बड़ी बात है? अंग्रेज स्वामी दयानंद के एकता लाने वाले प्रयासों से चिढ़े हुए थे। सारे भारत को एक सूत्र की लड़ी में पिरोने के लिये ही ऋषि दयानंद ने वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार किया। ऐसा समझने वाले अंग्रेज और मुसलमान उनके विरुद्ध निर्णय न देते तो क्या करते? वह दोनों हिन्दुओं को मूर्ख और अंधकार में डूबो देखना चाह रहे थे जिससे वह हिन्दुओं की खेती काट २ कर अपने सम्प्रदाय को बढ़ावें और हिन्दुओं को इस प्रकार से समाप्त करदें। इस पर भी अनेक निष्पक्ष ईसाई मुसलमान ऋषि के भक्त एवं पक्षपोषक थे।

स्वामी केशवदेव सनातन धर्म के अच्छे पहरेदार हैं कि आर्यजाति की रक्षा करने वाले सच्चे आर्य प्रहरियों को समाप्त करके सारी भारतीय जनता को विधर्मियां की दया पर छोड़ देना चाहते हैं। धन्य है आप की पहरेदारी! तभी तो आर्यजाति आप जैसे पहरेदारों को कराहती हुई व्यंग्योक्ति से कहती है कि:—

> उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते
> सुजनता प्रथिता भवता परम्।
> विदधदीदृशमेव सदा सखे
> सुखितमास्व ततः शरदां शतम्॥
>
> —साहित्य दर्पण।

हे पहरेदार! आपने यह पुस्तक लिख कर और ऋषि दयानंद जैसे महात्मा को गालियाँ देकर खूब उपकार किया आपके इस उपकार का क्या कहना? आपने अपनी सज्जनता की सुगन्धि खूब फैलाई। क्या कहने इस सुगन्धि के। हे मित्र! आप तो सदैव इस स्वभाव के बन चुके हो तो भले ही ऐसा करते रहो किन्तु हम अपना कर्तव्य नहीं छोड़ेंगे। भगवान् आपको सैकड़ों वर्षों का जीवन प्रदान करके सदा सुखी रखें। आप मौज उड़ाओ। दूध पीने वाले अपना खून पसीना नहीं बहाया करते। खून पसीना बहाने

(५) भद्रकाली

बलिवैश्वदेव यज्ञ वेदानुकूल है। वेद में लिखा है कि:—

शुक्रमसि चंद्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ यज० ४।१८

तू वैश्वदेव बलि दिया कर जिससे तू शुद्ध, शक्तिशाली, शीघ्रकारी, आह्लादप्रापक, तथा अमृतपदवी प्राप्त कर सके। यह वेद भगवान् ने कहा है।

बलिवैश्वदेव के मंत्रों में मनुष्य जीवन के कर्तव्यों का निदर्शन है। निर्बलों, अनाथों, अतिथियों, गौ आदि पशुओं, पक्षियों और लाभदायक प्राणियों की रक्षा करना इस यज्ञ का ध्येय है। तथा राष्ट्रक्षा के साधनों को बल पहुंचाना और उसके विपरीत कार्यों से पृथक् रहना इस बलिवैश्वदेव यज्ञ का फल है। राष्ट्र रक्षार्थ पापी दुर्जनों की ताड़ना के लिये दंड विभाग के आधीन जेलखाने होते हैं जहां सदोष व्यक्तियों का सुधार किया जाता है। इसी विभाग को शास्त्र में भद्रकाली कहा है। भद्रकाल्यैनमः इसका अभिप्राय केवल इतना है कि इस विभाग के यथायोग्य प्रयोग के प्रति आभार माना जाये कि दोषियों के दोष दूर कर उनका सुधार हो। हम स्वयं सुधरे रहें और दूसरों के सुधार हेतु इस सुधार विभाग की सहायता करते हुए इस विभाग के प्रति कृतज्ञता का प्रकाश करें। बस इतनी-सी बात थी जिस पर प्रहरि महोदय क्रोधावेश में आकर लिखते हैं कि—

"यह भद्रकाली क्या आर्यसमाजियों की मौसी है, चाची है, दादी है या नानी है। सनातनधर्मियों की चोरी करना और उन्हीं को कोसना, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। पृ० ५

मौसी, चाची, दादी, नानी तो उनकी होगी जिन्होंने उसे काली देवी मानकर उसके नाम से सहस्रों मूक पशुओं को मारकर अपने पेट को पशुओं का कब्रिस्तान बनाना मान रखा है। खाते हैं स्वयं और नाम देवी देवता का। उन लोगों के साथ काली देवी का कोई रिश्ता हो तो हो। आर्यों के साथ उसका कोई रिश्ता नहीं। हम ऐसे कपोल कल्पित और पेटपूजा के लिये बनाये गये देवी-देवताओं को मानते ही नहीं तो हमारे साथ इनकी रिश्तेदारी कैसी? शास्त्र के उल्टे अर्थों को मानना सनातन धर्म का काम है, आर्य समाज तो यथार्थ शास्त्रीय रहस्यों को खोल-खोल कर उसकी व्याख्या करना धर्म समझता है अतः यह वैदिक धर्म है। उसका उल्टा सनातन धर्म ने मान रखा है। और कभी २ सनातन धर्मी भी आर्यों के अर्थों को अपना कर

विधर्मियों को उत्तर देकर अपना पीछा छुड़ाते है अतः उल्टा चोर कोतवाल को डांटे की कहावत भी उल्टी आप पर ही वापस आती दिखाई देती है।

मानो न मानो मरजी आपकी।

(६) भोग लगाना

"इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उस को जिमादेवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे (इस के आगे भी भोग लगाने का वर्णन) हैं।

—नहले पर दहला पृ०

धन्य है स्वामी केशवपुरी जी महाराज ! कि ऋषि दयानंद जी तो भाग शब्द लिखते हैं और आप उसे भोग समझ रहे हैं।

श्रीमन् ! भोग आपके देवी देवताओं को लगता है जो स्वयं खा नहीं सकते। भोग लगाने वाले स्वयं खा जाते हैं। देवी देवताओं का तो नाम ही नाम होता है। शेष सब अपनी उदर पूर्ति है। यदि जड़ देवी-देवता भोग ल पदार्थों को खाने लग जायें तो पुजारी भोग के स्थान से भागते दृष्टि गत हों

आर्यसमाज तो शास्त्र रीति से चेतन देवताओं का मान करता है उन्हें खिलाना और सेवा करना धर्म समझता है। तभी तो स्वामी दयानंद महाराज ने लिखा है कि यदि कोई अतिथि हो तो यह भोजन उसको खिला अन्यथा अग्नि में होम दे जिससे अग्नि के द्वारा प्राणिमात्र का भला हो।

बताईये तो इसमें क्या दोष है ? शास्त्र में देवी-देवताओं को भो लगाना तो नहीं लिखा। देखिये ! मनु धर्म शास्त्र का प्रमाण देकर इस आगे ऋषि दयानंद ने लिखा है कि:—

शुनां च पतितानां श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि।। मनु ३।९२

कुत्ते, कंगाल, पापरोगी, पक्षी, कृमि आदि को लिखा देवे।

अतः शास्त्र में जड़ देवी-देवताओं को भोग लगाना कहीं नहीं लिख यह अर्वाचीनों की बुद्धि का ही चमत्कार है, जिसका नाम भूल से सना धर्म रख दिया गया है। नाम लिया इन्द्र, वरुण, यम सोम इत्यादि का ख खिला दिया अतिथि को या अग्नि में डाल दिया तो इन्द्र वरुणादि तो भूखे रह गये। अगर आर्यसमाजी यह कहें कि इन्द्र यमादि को मिलता है हम पूछते हैं कि सनातनधर्मी यदि अपने मरे हुए लोगों के नाम पर ब्राह्म को भोजन कराते हैं तो तुम उनको क्यों कोसते हो। पृ०

पहिले तो सनातनधर्मी लोग पितरों को पहुँचना कहते और मानते थे।

आपने सुधार कर लिया कि पितरों के नाम पर ब्राह्मणों को खिलाना मृतक श्राद्ध है।

अब जरा इसमें और सुधार होना चाहिये कि ब्राह्मण मृत पितरों के नाम पर क्यों खावें। क्यों न वह विद्वान् बनें कि विद्या प्रकार के बदले उनकी सेवा की जावे। उन्हें श्रद्धा का पात्र समझा जाये। तब तो सनातनधर्म का सुधार होकर सनातनधर्म बनेगा जो वेद शास्त्र के आधार पर होगा। अभी तो रूढ़िवाद का नाम ही सनातनधर्म है जिसकी वकालत आप कर रहे हैं अभी उसको सहस्रों सुधारों की आवश्यकता है।

आर्यसमाज इन्द्र, वरुण, मित्र आदि के जड़ देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को पूज्य कदापि नहीं मानता और उनको भोग लगाना भी वेद विरुद्ध समझता है। यह सब नाम इन मंत्रों में ईश्वर के हैं और गौणरूप से राष्ट्ररक्षा करने वाले भिन्न-भिन्न विभागों के अध्यक्षों के नाम भी हो सकते हैं। जिनसे राष्ट्र और संसार का भला होता है। वह जड़ हो अथवा चेतन उन का नाम देवता है। तभी तो निरुक्त में लिखा है कि—

"देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा दीपनाद्वा......। निरुक्त अ० ८ खं० १५

दान करना, चमकना, चमकाना आदि गुणों से देव शब्द बनता है। जड़ देवों का सुधार यज्ञ से होता और चेतन का उपकार यज्ञ तथा चेतनों की सेवा करने से ही संभव है अतः इन दोनों प्रकार के लाभकारी देवों के सुधार तथा उपकार के लिये ऋषि दयानंद ने लिख दिया कि भोजन का भूखा अतिथि आदि मिल जाय तो खिला दें अन्यथा अग्नि में होम दें। इससे मृतक श्राद्ध की सिद्धि कदापि सम्भव नहीं।

(७) मृतक श्राद्ध अर्वाचीन है

मनु धर्म शास्त्र में १५ दिन का मृतक श्राद्ध कहीं नहीं लिखा। यह तो अर्वाचीन है। इसका नाम सनातन धर्म नहीं है। देखिये :—

युधिष्ठिर को भीष्म ने कथा सुनाई कि निमि का पुत्र "श्रीमान्" मर गया। शोक में लड़के को पहुंचाने के निमित्त लड़के की रुचि का ध्यान रख कर ब्राह्मणों को खिलाया। पश्चात् पछताया कि वेदविरुद्ध कार्य से ऋषि रुष्ट होंगे :—

पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥१६

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयैतदनुष्ठितम्।

किन्नु शापेन न मां बहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥१७ —अनुशासनपर्व ६१।१६,१७

निमि बहुत बड़े पश्चाताप से तपता हुआ सोचने लगा कि मुनियों ने पूर्व कभी भी मृतक के लिये श्राद्ध नहीं किया। मैंने यह क्या कर दिया, कहीं ब्राह्मण शाप से मुझे जला न दें।

वराह पुराण में भी यह कथा आती है। वहाँ इन महाभारत के ऊपर लिखित श्लोकों के पश्चात् लिखा है कि :—

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरं द्विज।

न च श्रुतं मया पूर्वं न देवै. ऋषिभिः कृतम्॥

मृतक के नाम श्राद्ध करना अनार्यपन है। इससे स्वर्ग प्राप्ति नहीं होती और न यश मिलता है। मैंने इससे पूर्व मृतक श्राद्ध का नाम तक नहीं सुना। देवों और ऋषियों ने यह कार्य कभी नहीं किया।

तब नारद ने निमि से कहा कि—

न भेतव्यं त्वया पुत्र प्रेतकार्यकृते सति।

अद्य प्रभृति लोकेऽस्मिन् पितृयज्ञं भविष्यति॥

वराह पुराण अध्याय १८७

हे राजन्! आपको पुत्र के मृतक श्राद्ध कर लेने पर नहीं डरना चाहिये। आज से इस लोक में पितृयज्ञ होने लगेगा।

इस प्रमाण से सिद्ध हो गया कि मृतकश्राद्ध निमि से पूर्व प्रचलित न था। अतः यह कार्य सनातन नहीं, अर्वाचीन है। गलत सिद्धान्तों को मानने का नाम ही सनातन धर्म पड़ गया है। उसी की वकालत प्रहरी महोदय करने लग गये जब पहरेदारों की यह अवस्था है तो शेष जनता की क्या अवस्था होगी? पितृयज्ञ के अर्थ मृतक श्राद्ध के नहीं हैं। जीवितों का नाम पितर है। वेद में ही लिखा है कि—

जीवसा नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता॥

—अथर्व १९।३९।३

जीती ही तेरी माता और जीते ही तेरे पिता हैं।

पुराण में भी लिखा है कि—

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च।

विद्यादाता जन्मदाता पंचैते पितरो नृणाम्॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्रह्मखंड १ अ० १०।१५३

अन्नदाता, रक्षक, श्वशुर, अध्यापक और जन्मदाता यह पांच मनुष्यों के पितर हैं।

पुनः इसी पुराण में लिखा है कि—

विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः॥

ब्रह्मवैवर्त गणपति खंड ३ अ० ८।४७

विद्यादाता, अन्नदाता, भयत्राता, जन्मदाता, कन्यादाता मनुष्यों के वेदोक्त पितर हैं।

अब निर्णय हो गया कि वेदोक्त पितर मृतक नहीं होते। जीवित पितर ते हैं। जीवित पितरों की श्रद्धा से सेवा करने का नाम ही श्राद्ध और नकी तृप्ति करना ही तर्पण कहाता है। अन्यथा मृतकों को पितर कहें तो र्जन्म के सिद्धान्तानुसार व्यवस्था में गड़बड़ी होगी। शरीर फूंक दिया तब र-पूरी से उनकी तृप्ति असंभव है। देखिये—

सा च संध्या सुता मे हि मनो जाता पुराऽभवत्।
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव जाता त्वरुन्धती॥८॥
मेधातिथेः सुता भूत्वा मुनिश्रेष्ठस्य धीमती॥६॥
वव्रे पतिं महात्मानं वसिष्ठं शंसितव्रतम्॥१०॥

शिवपुराण रुद्र संहिता २ सती खंड २ अ० ५।८-१०

ब्रह्मा बोले कि यह मेरी लड़की सन्ध्या मनु से पूर्व पैदा हुई। तप तप- र शरीर छोड़कर वही संध्या दूसरे जन्म में अरुन्धती बनी। मेधातिथि मुनि ष्ठ की लड़की बनकर उसने प्रशंसित व्रत वाले महात्मा वसिष्ठ को पति प में वर कर विवाह किया।

वसिष्ठ भी ब्रह्मा के पुत्र थे और अरुन्धती पूर्व जन्म में ब्रह्मा की पुत्री। जिसका नाम संध्या था। अरुन्धती ने अपने पूर्व जन्म के भाई के साथ वाह किया। क्योंकि वसिष्ठ को ब्रह्मा का पुत्र लिखा है।

देखो बल्लराज ने भोज से कहा कि—

त्रैलोक्यनाथो रामोसि, वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः।
तेन राज्याभिषेके तु मुहूर्तः कथितोऽभवत्॥ —भोजप्रबंध

राम त्रिलोकी नाथ और वसिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र थे। वसिष्ठ ने राम के ज्याभिषेक का मुहूर्त बताया था जो गलत निकला क्योंकि राम को राज्य बदले १४ वर्ष के बनवास में जाना पड़ा। अतः यह फलित ज्योतिष ठी है।

सन्ध्या ब्रह्मा की पुत्री थी। दूसरे जन्म में मेधातिथि की पुत्री बनी,

नाम अरुन्धती हुआ। विवाह वसिष्ठ से किया जो पूर्व जन्म का उसका भा है। तब यदि मृतक का नाम पितर है और मरने के उपरान्त भी पितर नह टूटा, तो वसिष्ठ अरुन्धती का विवाह अनुचित मानना होगा। अब प्रहरी ज बतायें कि इन दोनों में सनातन धर्म क्या है?

अजब मुश्किल में पड़ा है जेब्रोदामान का सीने वाला।

जो यह टांका तो वह उधड़ा, जो वह टांका तो यह उधड़ा।।

यही सनातन धर्म की अवस्था है। जिसे उर्दू के कवि ने वर्णन कर दि है। अतः मृतक श्राद्ध वेद विरुद्ध और सर्वथा अर्वाचीन है।

(८) प्रमाणाभाव

स्वामी केशव पुरी ने मूर्तिपूजा के अनुमोदन में अपनी सारी पुस्तक एक भी मंत्र वेदों से नहीं लिखा। ऋषि दयानंद और आर्यसमाज पर कु टुकियां अवश्य ले ली हैं। इतने से ही आप खुश हैं और मूर्तिपूजन क समर्थन समझ रहे हैं तो आपको पहरेदारी तथा सनातनधर्म की रक्षा क ठेकेदारी आपको मुबारक।

(६) छुरे की पूजा

प्रहरी जी ने लिखा है कि—

"स्वामी दयानंद जी ने यों कहा कि नाई के छुरे (उस्तरे) से प्रार्थ करो। दयानंद जी की रचित संस्कार विधि के चौल प्रकरण में लिखा है कि-

"**ओं विष्णोर्द्रंष्ट्रोसि" इस मन्त्र से छुरे की ओर देखकर** (दयानन्द ज ने **इसका अर्थ नहीं लिखा**) **इसका अर्थ है—हे छुरे! तू विष्णु की द है।....तुझे नमस्कार हो। तू इस बालक को हानि मत पहुंचाना.... हे तेज धार वाले छुरे! इस बच्चे को मत मार।**

विवेकी पाठको! आर्य समाजियों का परमात्मा या ईश्वर निराकार निराकार की दाढ़ कैसी? आप जानते हैं कि हवा निराकार है। क्या आप उसकी दाढ़ देखी है? अगर देखी है तो कृपा कर मुझे भी बताने का क करें कि कितने इन्च और कितने सेण्टीमीटर लम्बी-चौड़ी और मोटी हो है।" पृ०

प्रहरी जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि स्वामी दयानंद जी ने मुंडन संस्क में दिये मन्त्र "ओं विष्णोर्द्रंष्ट्रोसि" का अर्थ नहीं लिखा।

आपने स्वयं मनमाने अर्थ करके आर्यों पर जड़ दिये और समालोच भी मन से लेकर कर दी। वाह आपकी पहरेदारी। सनातन धर्म की पड़

दारी का यही ढंग है ? सत्य ही कहा है कि—

वही है चाल बेढंगी जो पहिले थी सो अब भी है ।

स्वयं गलत अर्थो की कल्पना करके वही अर्थ स्वयं दयानन्द पर मढ़ देते हैं और कहते हैं कि अब अपनी रक्षा कैसे करोगे ? कवि ने आप जैसों के लिए ही लिखा था कि—

वही कातिल, वही मुखबिर, वही है मुनसिफ भी ।
मेरे अकरबा करें खून का दावा किस पर ।।

श्रीमान् जी ! आपके अर्थ सर्वथा गलत और प्रकरण के विरुद्ध हैं । यदि किसी आर्यसमाजी ने भी इसके यही अर्थ लिखे हैं तो उसके गलत अर्थ भी स्वामी दयानन्द जी पर मढ़े नहीं जा सकते । पहले यथार्थ अर्थ करने की आर्य विधि जानी चाहिये ।

निरुक्त जो वेदार्थ प्रतिपादक आर्ष ग्रन्थ है उसमें मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थों का वर्णन किया है । आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक । यह तीन प्रकार के अर्थ होते हैं । तथा यास्क का दृढ़ सिद्धान्त है कि—

प्रकरणशः एव निर्वक्तव्या: ।

मन्त्रों का निर्वचन प्रकरणानुसार ही होना चाहिये । अतः प्रकरणानुसार ठीक अर्थ शास्त्ररीत्या निम्न प्रकार होंगे :—

यज्ञो वै विष्णुः । शतपथ १।१।२।१३

विष्णु यज्ञ का नाम है ।

दंष्ट्रो दंशदशने = काटने का शस्त्र ।

स्वधितिः = वज्र । निघंटु २।२०

नमः = अन्न । निघंटु २।७

इन शास्त्रीय प्रमाणों के साथ प्रकरणानुसार इसके ठीक अर्थ होंगे कि:—मुंडन संस्काररूपी यज्ञ का साधन छुरा है । वह तेज धार वाला फौलादी बना होना चाहिये जिससे इस बालक के सिर को कष्ट न पहुंचे ।

मुंडन संस्कार में परमात्मा की दाढ़ का अर्थ करना अनर्थ नहीं तो क्या है ? छुरा फौलादी हो । इस प्रकरण में हमारा अर्थ ही उचित है ।

प्रयाग में छुरे को नमस्ते का विधान है । उसका उत्तरदायित्व आप पर है क्योंकि आप तो नमस्ते शब्द से ही दूर भागते हैं :—

क्षुरिके रक्ष मां नित्यं नमस्तेऽस्तु ते ।

—भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अ० १३०।७७

. हे छुरे ! मेरी रक्षा नित्य कर, तुझे नमस्ते हो।
अतः आपकी समालोचना आप पर ही चरितार्थ होती है।

(१०) पटेले की पूजा

"और देखिये ! हम सनातन धर्मी लोग लोहा, लक्कड़, कंकड़-पत्थर व भगवान् मानकर पूजते हैं, भोग लगाते हैं प्रार्थना करते हैं तो यह आर्यसमाजी भी तो जड़ (अचेतन) वस्तु की पूजा करते हैं। लकड़ी के पटेले की पूजा विधिवत् करने को दयानंद जी ने कहा है। इसलिये मानना पड़ेगा कि आर्य समाजी भूतिपूजक हैं। तब हम ये पूछिये कि सनातनियों की पूजा करते देख कर इनके पेट में शूल क्यों उठते हैं ?
नहले पर दहला पृ० ७

आपने अपने शब्दों की सिद्धि के लिये प्रमाण कोई नहीं दिया। जिस ग्राम को सौंक के अर्क में भिगोकर बोया जाता है, उसका नाम सौंफिया आम होता है जो सौंफ की सुगंधी वाला और शीघ्र पक जाता है। ऐसे ही दुबिया आम और शहदिया आम उन गुणों से पूज्य होते हैं।

इसी प्रकार ऋषि दयानंद जी ने भी वेद मंत्रार्थ में खेत में चलने वाले सुहागे के साथ बीज को घी, दुग्धादि से सुसंस्कृत करने का प्रकार लिखा है। कृषि विद्या के ज्ञाता अब भी ऐसा करते हैं। वहाँ पटेले की पूजा की कोई चर्चा नहीं। इससे आपकी जड़ मूर्तिपूजा का समर्थन भी नहीं होता।

आपके कंकर, लक्कड़ पत्थर को भगवान् मानकर पूजा करने से आर्यों के पेट में शूल यों पड़ता है कि वह कार्य वेद विरुद्ध है और इससे आर्य जाति में फूट पड़ती है। देखिये वेद में लिखा है कि:—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो यउ **सम्भूत्यां रताः ॥ यजु० ४०।९**

जो लोग कारणरूप जड़ प्रकृति की उपासना करते हैं वह घोरान्धकार में प्रविष्ट होते हैं और जो लोग कार्यरूप जड़ पदार्थों की उपासना करते हैं। वह तो उससे अधिक महाघोर अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं।

अतः वेद भगवान् ने आज्ञा दी है कि

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः। यजु० ३२।३

भगवान् की कोई प्रतिमा=मूर्ति नहीं है जिसका नाम बहुत बड़े यश वाला है।

इस मंत्र में ईश्वर के यशस्वी नाम ओ३म् की उपासना की आज्ञा है

ग्रौर उसकी मूर्ति का सर्वथा निषेध है। क्योंकि सर्वव्यापक निराकार की मूर्ति नहीं होती ग्रौर न वह शरीरधारी होता है ग्रत: वेद ने कहा कि:—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः । यजु० ४०।८

वह परमात्मा सर्वव्यापक है, किसी भी कार्य में साधन की अपेक्षा नहीं रखता ग्रत: वह काया = शरीर रहित, फोड़े-फुन्सी से रहित, नस नाड़ी के बन्धन से रहित, ग्रौर तीन प्रकार के शरीरों के बन्धन से भी सर्वथा रहित है क्योंकि वह शुद्ध स्वरूप ग्रौर पाप रहित है ग्रत: किसी शरीर बन्धन में नहीं फंसता। वह क्रान्तदर्शी, मनों का स्वामी सब ग्रोर वर्तमान, ग्रौर स्वयं सिद्ध है उसे किसी ने नहीं बनाया, उसी परब्रह्म परमात्मा ने यथावत् रूपेण समस्त सृष्टि के पदार्थों को रचकर अपनी नित्य रहने वाली जीवरूपी प्रजा के लिये वेद के ग्रर्थों का प्रकाश करके अपना विधान दिया।

इसी एक मंत्र के यथार्थ ग्रर्थ को प्रहरी जी समझ लें तो अपनी लिखी पुस्तक का खंडन स्वयं कर देंगे।

(११) हृदय मंदिर में भगवान्

'हम सनातनी ग्रार्य समाजियों जैसी मूर्खता कभी नहीं करते। हम तो ग्रणु-ग्रणु में रहने वाले परमात्मा की मूर्ति की कल्पना सब से पहिले हृदय में करते हैं। फिर उससे प्रार्थना करते हैं कि यहां ग्राग्रो, इस मूर्ति में बैठो, बैठकर स्थिर हो जाग्रो। विचार कीजिये कि हम पत्थर को पूजते हैं या भगवान् को। सनातनियों का अनुकरण करना ग्रौर उन्हीं को गाली देना, जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना।" नहले पर दहला पृ० ७

स्वामी केशवपुरी ग्रौर दूसरे पौराणिकों को भगवान् ने बना कर इनमें प्राण प्रतिष्ठा की किन्तु यह महानुभाव परमात्मा को बना कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। जयपुरादि नगरों से भगवान् बन कर ग्राते, बिकते-बिकाते, गाड़ी में यात्रा करते हैं। चोरी भी हो जाते हैं। इनको ग्राभूषण पहनाए जाते हैं। उन ग्राभूषणों की रक्षा भी मूर्तियों के भगवान् स्वयं नहीं कर सकते। उनके ब्याह, शादी, सोना जगाना, प्राणप्रतिष्ठा, प्राण विसर्जनादि कार्य सभी मनुष्यों के ग्रधीन हैं पुनरपि वह भगवान् माने जाकर पूजे जा रहे हैं। वेद के शब्दों में इससे बड़ा, घोर, महाघोर ग्रंधकार ग्रौर क्या होगा? काशी के विश्वनाथ मन्दिर को ग्रौरंगजेब ने तोड़कर मस्जिद में तब्दील कर

दिया किन्तु विश्वनाथ जी अपने घर की रक्षा न कर सके। किसी ने मूर्ति कूप में डाल दी तो प्रसिद्ध हो गया कि विश्वनाथ जी की करामात देखो कि म्लेच्छ के हाथों से विश्वनाथ जी भ्रष्ट न हो जायें अतः कूप में जा छिपे हैं। आज दिन तक विश्वनाथ जी का निवास कूप में है और पुजारी कूप में भांक कर बम-बम, बम भोले महादेव के घोष से उन्हें प्रसन्न करते हैं। किन्तु औरंगजेबी शासन समाप्त हुए सदियां बीत गई। अंग्रेजी शासन आया और उसके पश्चात् भारत को स्वतंत्र हुए इतने वर्ष हो गये पुनरपि विश्वनाथ जी इतने भयभीत है कि कूप से निकलने का नाम नहीं लेते। उन्हें अभी तक ज्ञात ही नहीं कि अब उनको म्लेच्छ से भ्रष्ट होने का कोई भय नहीं।

सोमनाथ मन्दिर की महादेव की मूर्ति को जिस प्रकार से खंडित करके महमूद गजनवी ने लूटा और भारत की अबला ललनाओं के साथ जो बीती, वह इतिहास का विषय है। इन बिचारे मूर्तियों के कल्पित भगवान् आर्य जाति की पीड़ा को क्या जानें? स्वयं श्राद्य शंकराचार्य जी ने षोडशोपचार पूजा का खंडन करते हुए मूर्तिपूजा का निषेध किया है। देखिये :—

पूर्णस्यावाहनं कुत्र, सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च, शुद्धस्याचमनं कुतः ॥१
निर्लेपस्य कुतो गन्धः, पुष्पं निर्वासनस्य च।
निर्विशेषस्य का भूषा, कोऽलंकारो निराकृतेः ॥२
नित्यतृप्तस्य नैवेद्यं, ताम्बूलं च कुतो विभोः।
निरञ्जनस्य च किं धूपैः, नैवद्यं किं भविष्यति ॥३
स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभो।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथं निर्वासनं भवेत् ॥४
स्वयं प्रकाशचिद्रूपो योऽसावर्कादि भास्करः।
गीयतेश्रु तिभिस्तस्य, नीराजनविधिकुतः ॥५
प्रदक्षिणमनन्तस्य, प्रणामोऽद्वयवस्तुनः।
अन्तर्बहि संस्थितस्य उद्वासनविधिकुतः ॥६

—स्वामी शंकराचार्य कृत परा पूजा बृहत्स्तोत्र रत्नाकर

सर्वत्र परिपूर्ण ईश्वर का आवाहन (बुलाना) कहां हो सकता है? सर्वाधार को आसन देना नहीं बनता, स्वच्छ और नित्य पवित्र का पाद मुख प्रक्षालन गलत है, शुद्ध स्वरूप का आचमन की कहां और क्यों कर होगा? ॥१॥

निर्लेप नारायण को सुगन्ध क्योंकर दी जाए ? वासना रहित को पुष्प गंध की आवश्यकता नहीं। विशेषता रहित के लिये वस्त्र परिधान संभव नहीं तथा निराकार परमात्मा अलंकारधारी नहीं हो सकता ।।२।।

नित्य तृप्त ईश्वर को भोग लगाना नहीं बनता। विभू सर्वव्यापक भगवान् को ताम्बूल देना बेकार है। निरंजन भगवान् को धूप, दीप की आवश्यकता नहीं ।।३।।

सर्वव्यापी स्वयं प्रकाशमान प्रभु की आरती कैसे होगी ? अन्दर बाहिर परिपूर्ण परमेश्वर के बाहिर आने (निवासिन) का क्या अभिप्राय हो सकता है ? ।।४।।

जो स्वयं प्रकाशमान चेतन स्वरूप सूर्यादि लोकलोकान्तरों का प्रकाशक है जिस की महिमा का गान वेद की श्रुतियों द्वारा होता है उसकी आरती सूर्य को दीपक दिखाने के समान उपहास मात्र है ।।५।।

अनन्त प्रभु की प्रदक्षिणा नहीं हो सकती तथा अद्वितीय भगवान् के लिये प्रणाम नहीं हो सकता। अन्दर बाहिर परिपूर्ण भगवान् की उद्वासन विसर्जन विधि भी संभव नहीं। सुरश्रेष्ठ द्वारा उसका प्राण विसर्जन भी नहीं हो सकता ।।६।।

जब भगवान अणु-अणु में रम रहा है। सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी है तो उसकी मूर्ति की कल्पना हृदय में कहां हो सकती है ? भगवान से प्रार्थना करना कि यहां आओ, इस मूर्ति में बैठो, बैठ कर स्थिर हो जाओ। ऐसा कहना ही गलत है। भगवत्तत्व को समझना अभी दूर की बात है। शास्त्रों पर ठीक ढंग से विचार किया होता तो प्रहरी जी यह व्यर्थ न लिखते। या वे जान बूझ कर भोले बने रहे हैं जिसमें कोई विशेष स्वार्थ निहित है। यह प्रहरी महोदय जानें। मैं इस में कुछ नहीं कह सकता। आर्यसमाज वैदिकधर्म के सर्व सिद्धान्तों को मानता है। हमें सनातनधर्म के अन्धानुकरण की आवश्यकता नहीं। "जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना" इस फबती को हम स्वीकार नहीं करते।

(१२) बुद्धि का दिवाला किसका

प्रहरी जी की सीनाजोरी देखिये कि ऋषि दयानंद के नाम से अपने मनमाने शब्द मिलाकर पुनः उनका उपहास करने लग जाते हैं। शाबाशी है ऐसे धर्म प्रेमी को जो धर्म रक्षार्थ अनर्थकारी कार्य करने में भी संकोच नहीं करते। यह तो ऐसी कार्यवाही है जैसे किसी की जेब में अफीम डालकर पकड़ो-पकड़ो का शोर मचा दिया जाय। स्वामी-केशव पुरी लिखते हैं कि—

"स्वामी दयानन्द जी ने यों कहा है कि जूते से प्रार्थना करो।" "संस्कार विधि" के समावर्तन प्रकरण में स्वामी दयानंद जी ने लिखा है—

श्रों प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम् ।। पारस्कर कांड ३ कं० ६

इस मंत्र से जूते से प्रार्थना करे—

'हे जूता ! तुम शरीर के आधार हो, सब भूतल पर मेरे पांवों की रक्षा करो।"

पाठको ! किसी गडरिया, घसियारा या मेहतर को यह उपदेश सुनाना लेकिन ध्यान रहे, दूर से बात करना, ताकि अगर कहीं वह जूता फेंक कर मारे तो आपको लगे नहीं। स्वामी दयानंद जी की बुद्धि का दिवाला निकल गया।"

नहले पर दहला पृ० ७-८

ऊपर के शब्द प्रहरी ने लिखे हैं। ऋषि दयानंद के नाम से जो कुछ इन शब्दों में लिखा है सर्वथा मिथ्या और उसकी समालोचना में "स्वामी दयानंद की बुद्धि का दिवाला निकल गया" यह संसार के इतने बड़े महापुरुष के प्रति अनर्गल प्रलाप नहीं तो क्या है ? शोक है कि मुझे यह शब्द नकल करने पड़े। नकले कुफर कुफर न बाशद।

है यह मुंबद की सदा जैसी कहे वैसी सुने।

क्या सनातन धर्म का काम गाली देना ही रह गया है ? गालियों से ही धर्म निर्णय होगा क्या ? शोक ! महाशोक !! इससे भी अधिक शोक यह है कि इस पुस्तक के टाइटल पर लिखा है कि—

जगद्गुरु का आशीर्वाद।

पदवाक्य प्रमाण पारावारीण अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर पूज्यपाद स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज का आशीर्वाद—

"इस पुस्तिका को सदैव मेरे शुभाशीर्वाद हैं।" श्री निरञ्जन:

क्या इन्हीं गालियों को यह आशीर्वाद दिया है ?

प्रहरी साहिब ! संस्कारविधि में यह शब्द कहीं नहीं लिखे। वहां केवल पारस्कर का संस्कृत वाक्य दिया है। उसके अर्थ भी नहीं लिखे। यह सभी शब्द आप के काल्पनिक हैं इसी पर आपने गडरिया, घसियारा, मेहतर द्वारा जूता फेंक कर मारने का अनर्गल प्रलाप किया है और महर्षि श्री स्वामी दयानंद जी महाराज की शान में कुछ-का-कुछ लिखा है। यदि आप में साहस है तो संस्कार विधि में ऋषि के यह अर्थ दिखाइये। भगवान् से डरिये और गाली

देने के महापाप से बचिये। अन्यथा आपको ईश्वरीय प्रकोप का भाजन बनना होगा। आपने महापुरुषों के संरक्षण की धारा १५३ भ को भी तोड़ा है। सरकार तक आपके यह जवाब पहुँचे तो अवश्य दूध-का-दूध और पानी-का-पानी होकर रहेगा।

पारस्कर के शब्दों का भाव स्पष्ट है कि स्नातक जूते पहनता हुआ कहता है कि—

प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।

ये जूते मजबूत हैं, सब ओर से पैरों की रक्षा करें। अतः मैं इनको पहनता हूँ।

संस्कृत व्याकरणानुसार यही संभव अर्थ हो सकते हैं।

व्यत्ययो बहुलम्। अष्टाध्यायी ३।१।८५

पर महाभाष्य में कारिका है कि—

सुप्तिङुपग्रहलिंगनराणां काल हल च स्वरकर्तृयङां च।
व्यत्ययमिच्छन्ति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्धयति बाहुलकेन॥

इस कारिका में पुरुष व्यत्यय भी है। जिसके अनुसार यही संभव अर्थ हैं।

निरुक्त में महर्षि यास्क ने परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और अध्यात्मकृत तीन प्रकार की ऋचाओं का वर्णन किया है। सामने जड़ हो या चेतन उसे तू कह कर वर्णन किया जाता है किन्तु जड़ में उसका अभिप्राय "यह" से होता है। जैसे ऐ मेरी तलवार! तू बहुत तेज है। आज शत्रु को काट गिरा। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि यह मेरी तलवार बहुत तेज है। इससे आज मैं शत्रु का सिर काट गिराऊंगा।

यदि सनातन धर्मी भाइयों में धर्म की कुछ भी जिज्ञासा है तो वैदिक अर्थ विधि को समझने की कृपा करें अन्यथा ऋषि दयानन्द जैसे महोपकारक देवता पर गाली वृष्टि करना ईश्वर के सम्मुख दोषी ठहरना है। मैंने गाली के उत्तर में गाली देना उचित नहीं समझा। गुरु में निवेदन कर ही चुका हूँ।

ददतु ददतु गालीं गालीमन्तो भवन्तः।
वयमपि तदभावाद् गालीदानेऽसमर्थाः॥
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम्।
नहि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

मेरा निवेदन है कि सभ्य संसार तो बुद्धि का दीवाला गाली देने वाले का ही समझता है अतः इस महापाप से बचिये।

(१३) छठी का दूध

"छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनि संकोचनादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहिर निकले और सन्तान को दूध पीने के लिये कोई धायी रखे। उसको खान-पान अच्छा कराये। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे। परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रखे। किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बंद करने के अर्थ स्तन के अग्र भाग पर ऐसा लेप करें कि जिससे दूध स्त्रवित न हो।"

सत्यार्थप्रकाश समु० ४

यह प्रमाण देकर प्रहरी जी लिखते हैं कि—

पाठको! बेचारे गरीब आर्यसमाजी तो मारे गये। उनको धायी रखने के लिये पैसे कौन देगा? और योनिसंकोचन की विधि किस-किस से पूछते फिरें। दूसरी बात यह है कि"......एक बलवान, बुद्धिमान् या सामर्थ्यवान् दूसरे को ललकारता है कि मां जाओ जिसकी मां ने दूध पिलाया है। विचार करो कि कितना रहस्य भरा है इस कहावत के अन्दर। न जाने कितनी लम्बी परम्परा से यह चली आयी है और वेदों की टांग तोड़ने वाले स्वामी दयानंद जी धात्री का दूध पिलाने का उपदेश देते हैं। जानते हैं, धायी रखने का यह आविष्कार स्वामी दयानंद जी ने ईसाईयों से प्रेरणा लेकर किया है। जिनके जीवन का ध्येय होता है—"ईट, ड्रिंक ऐण्ड बी मेरी' जबकि हमारे भारत का ध्येय मनुष्य को परमात्मा बनाना रहा है। पृ० न० ६

स्वामी केशव पुरी अपने धर्म ग्रन्थों को जानते तो यह शब्द कदापि न लिखते जबकि शास्त्रों में यह सब कुछ लिखा हुआ है। इन समस्त सिद्धान्तों पर सनातन धर्मियों का पूर्ण विश्वास है। और गृहस्थ लोग यह सब कुछ करते हैं। सामर्थ्यवान् गृहस्थ के लिये ही धायी रखने का विधान है। सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थों में धायी के प्रकरण लिखे हुए हैं। सुश्रुतादि में गरीब सनातन धर्मियों के लिये धायी का विधान नहीं है। सामर्थ्यवान् के लिये है। रामायण में भी धाया रखने का वर्णन है। राम के पालन-पोषणार्थ धाया का प्रबंध किया गया था।

सा हर्षोत्फुल्लनयनां पांडुक्षामवासिनीम्।
अविद्दूरे स्थितां दृष्ट्वा धात्रीमप्रच्छ मन्थरा॥

—अयोध्याकांड ७/७

उस मंथरा ने [illegible] [illegible] धारण किये गंभीर ठहरी हुई धाया को देखकर उससे पूछा ।

सुश्रुत में लिखा है कि—

ततो दशमे ह्नि यथावर्णं धात्रीमुपेयात् ।

सुश्रुत शारीरिक स्थान अ० १०

तब दसवें दिन यथावर्णं धाया को प्राप्त करे ।

वेद में भी इसका मूल मौजूद है कि—

धापयेते शिशुमेकं समीची । यजु० १२।२

एक शिशु को दो मातायें दूध पान कराती हैं ।

अतः ऋषि दयानंद ने जो कुछ लिखा वेद शास्त्र के आधार तथा वैद्यक ग्रन्थों के अनुसार लिखा । किन्तु इसका अनुष्ठान सामर्थ्यवान् लोगों के लिये ही है । जैसे यज्ञ हवन समर्थता पर आधारित है । समर्थता न होने पर केवल मंत्र पाठ ही पर्याप्त है । जैसा कि वेद में आदेश है । अतः आपके यह शब्द कि "बेचारे गरीब आर्यसमाजी तो मारे गये उनको धायी रखने के लिये पैसे कौन देगा ?" व्यर्थ हो गये ।

लोक में प्रसिद्ध है कि ललकारने वाला कहता है कि जिस माई के लाल में साहस हो मैदान में निकले । मैं उसे छठी का दूध याद करा दूंगा ।

यदि आप सनातन धर्म का सिद्धान्त यही समझे हैं कि किसी भी अवस्था में कोई भी धाया नहीं रख सकता और धाया से बच्चे को दूध पिलाना आपके सिद्धान्त के विरुद्ध है तो इसका समाधान कीजिए कि—

षष्टि पुत्र सहस्राणि तुंबभेदाद्विनिःसृताः ॥१७॥
घृतपूर्णेषु धाथ्यास्ताम् समवर्धयन् ॥१८॥

बालकांड अ० ३८।१७, १८

राजा सगर के साठ हजार लड़के तुम्बी को फोड़कर निकल पड़े । तब घृत पूर्ण घड़ों में अनेक धायों ने उनको पाला ।

धाया के सिद्धान्त माने बिना सनातन धर्म एक साथ पैदा हुए बच्चों का पालन-पोषण कैसे करा पायेगा ?

कृष्ण जी ने माता देवकी से पैदा होकर यशोदा का दूध पिया । यह सिद्धान्त के अनुकूल है या नहीं ? अब आप इस गुत्थी को कैसे सुलझायेंगे ? ईसाईयों के मजहब को बने दो सहस्र वर्ष से कम समय हुआ और वेद आरम्भिक ज्ञान है । रामायण काल को भी लाखों वर्ष बीते जिसमें धाया

रखने का विधान है अतः ईसाईयों की नकल नहीं है प्रस्तुत भारतीय परम्परा है। जिस पर रामादि महापुरुषों का आचरण मौजूद है। आपका यह लिखना भी नितान्त मिथ्या है कि भारत का ध्येय पुरुष को परमात्मा बनाना है। पुरुष परमात्मा कभी नहीं हो सकता उसका महात्मा बनना ही संभव है क्योंकि अणु, विभु कभी नहीं हो सकता।

(१४) औषध लेप

"स्वामी दयानन्द जी ने प्रसूता स्त्री को योनि संकोचन का उपदेश दिया और स्तनों के अग्र भाग पर लेप करने का उपदेश दिया है। आपको पता है कि स्वामी जी बचपन में ही संन्यासी हुए थे। फिर यह रहस्य की बातें कैसे सीख लीं। आप कह सकते हैं कि पुस्तकों में पढ़ी होंगी। लेकिन हमें तो दाल में कुछ काला नजर आता है।" पृ० ६

सनातन धर्म के प्रहरी को सब कुछ काला नजर आता है क्योंकि शास्त्रों से आँख मूंद कर ही यह वचन लिखे गये हैं तो इसमें स्वामी दयानन्द और सत्य वैदिक सिद्धान्तों का क्या दोष ? देखिये वेद में स्तनों पर औषध प्रयोग का मूल मौजूद है—

सजातो गर्भोसि रोदस्योरग्ने चारु बिभृत. ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परितमास्यक्तून्प्रमातृभ्यो अधिकनिक्रदद्गाः ॥

य० ११।४३

इस मन्त्र में बालकोत्पत्ति, अनेक माताओं का दूध पीना और औषधि वर्णन स्पष्ट मौजूद है। इससे पहिले के मन्त्र में भी स्पष्ट लिखा है कि—
अग्निद्रे बहुले उभे ...... य० ११।३०

क्या आप इन पुराण प्रोक्त श्लोकों को वैदिक सिद्ध कर सकेंगे ?

स्तनौ मन्मथवासिन्यै ललितायै भुजद्वयम् ।
भवि० उत्तरपर्व ४ अ० ३६।४४

स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कंधरम् ॥
भवि० उत्तर पर्व ४ अ० २६।४७

(१५) दाल में काला

"पश्चात् जिस दिन ऋतु दान देना उचित समझें उसी दिन संस्कार विधि पुस्तकस्थ विधि के अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सबके सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें। पुरुष वीर्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण को जो विधि है

उसी [illegible] तक वो यहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यय [illegible] वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व [illegible] वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय [illegible] स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र [illegible] शरीर और अत्यंत प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति के समय अपानवायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थिति करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।" (इसके आगे गर्भरक्षा सम्बंधी विधि बतायी है) सत्यार्थप्रकाश समु० ४।

"देखा आपने! गर्भाधान का कितना मार्मिक वर्णन स्वामी जी ने किया है। कोकशास्त्र के लेखक को यह वर्णन यदि पढ़ने को मिला होता तो निश्चय ही वे दयानंद जी का लोहा मान जाते। इसीलिये तो मैंने ऊपर कहा कि दाल में कुछ काला नजर आता है।" पृ० १०

स्वामी केशवपुरी कितने भोले और पारसा बन रहे हैं जैसे उनको पता ही न हो कि सनातन धर्म के शास्त्रों में यह सब विधि लिखी हुई है और सनातन धर्मी गृहस्थ इस को जानते हैं। यदि सनातन धर्मी भाई बहिनों को इसकी पूरी जानकारी न थी तो ऐसी संभावना समझकर आपने ऋषि वाक्य अपनी पुस्तक में मोटे शब्दों में उद्धृत कर दिये क्योंकि यह पुस्तक आपने उनके पढ़ने के लिये ही तो लिखी है। अन्यथा मूर्तिपूजा सम्बंधी पुस्तक में इस प्रकरण का अभिप्राय ही क्या था?

आपको एक यह भी शिकायत है कि स्वामी दयानंद जी ने विवाह नहीं किया था तो ऐसी बातें और गृहस्थ सम्बंधी गूढ़ रहस्य कैसे जान लिये। इस का उत्तर भी आपने दे दिया कि धर्म शास्त्रों को पढ़कर लिखदी होगी तो फिर आपको क्या आपत्ति है? और क्यों दाल में काला दिखाई देता है? क्या संस्कार फिलासफी ऋषि ने नहीं लिखी? और इसका वेद में भी विशद वर्णन मौजूद है तो वेद भी तो ब्रह्मचारियों के द्वारा प्रगट हुए इसमें तो आप भी सहमत हैं। ऋषि दयानंद ने वैदिक विधान लिखने का कारण भी लिख दिया कि इससे उत्तम सन्तान प्राप्ति होती है और मनुष्य जाति की नस्ल सुधर जाती है। यदि आप इतनी लाभप्रद विद्या के विरोधी हैं तो सनातन धर्मियों को रोक दीजिये कि वह इस वैदिक विधि का परित्याग कर दें और सन्तानोत्पत्ति की किसी और नयी पद्धति की खोज करें। क्योंकि वेद शास्त्रों

के जो पवित्र नियम ऋषि दयानंद जी ने लिख दिये हैं वे सनातन धर्मियों के लिये परित्याज्य हो गये हैं। धन्य हैं स्वामी शिवपुरी जी महाराज ! आपने तो स्वयं अखंड ब्रह्मचारी संन्यासी श्री स्वामी आद्य शंकराचार्य का प्रमाण लिख कर ऋषि दयानंद का समर्थन भी कर दिया "कि मंडनमिश्र की धर्मपत्नी भारती माता ने शास्त्रार्थ करते हुए उनसे कामशास्त्र पर प्रश्न करने आरंभ किये। जगद्गुरु हैरान हो गये। उन्होंने भारती माता से उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये ६ मास का समय मांगा। भारती माता ने स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् शंकराचार्य जी ने योग विद्या के द्वारा अपने स्थूल शरीर का त्याग कर एक तत्काल मरे हुए राजा के शरीर में प्रवेश किया और सांसरिक भोगों का अनुभव किया। ६ महीने बाद उन्होंने भारती माता से जाकर कहा—अब मैं आप के प्रश्नों के उत्तर देने को तैयार हूँ·········· यह है भारत का आदर्श।" पृ० ११।

स्वामी केशवपुरी सनातन धर्म के अच्छे प्रहरि हैं कि स्वामी दयानंद की दाल काली सिद्ध करते २ अपनी सारी दाल को काली बताने लग गये कि स्वामी शंकराचार्य ने भारती माता को उत्तर देने के लिये पर शरीर प्रवेश करके ६ मास तक काम शास्त्र सम्बन्धी सांसारिक भोगों का अनुभव किया। धन्य हो महाराज ! आप जैसे धर्म रक्षकों को कारण ही सत्य वैदिक सनातन धर्म संसार से समाप्त हो कर अब उसकी नैया भारत में भी संकट काल में पहुँच गयी है। ऋषि दयानंद की दाल में काला अवश्य कहा जाय चाहे उसमे अपनी सारी दाल काली बतानी पड़े। हमसाये की दीवार अवश्य गिरानी है चाहे उसके नीचे अपनी गाय क्यों न दब तोड़ जाय।

आद्य शंकराचार्य जैसे निष्कलंक महापुरुष पर आपने ६ मास तक काम शास्त्र सम्बन्धी सांसारिक भोगों का अनुभव करने का दोषारोपण कर दिया। पुनरपि उनके संन्यास की मर्यादा सुरक्षित रही !

प्रहरी जी ! क्या कह और लिख रहे हैं आप ! हम तो आपके इस सारे लेख को सर्वथा मिथ्या मानते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि स्वामी शंकराचार्य बहुत ऊंचे सदाचारी महापुरुष थे। उन्होंने कामशास्त्र सम्बन्धी सांसारिक भोगों को परस्त्री के साथ कभी नहीं भोगा। भगवान् से डरो। महापुरुषों के पवित्र जीवन पर कलंक मत लगाओ। स्वामी शंकराचार्य परम योगी और शास्त्रों के रहस्य के ज्ञाता थे अतः उन्हें इन बातों का उत्तर देने के लिये पर गृह गमन के अनुभव का पाप कभी नहीं करना पड़ा। उन्होंने भी उत्तर

देते हुए शास्त्रीय ज्ञान का सहारा लिया और स्वामी दयानंद जी महाराज ने भी संस्कार विज्ञान का शुद्ध स्वरूप संसार के कल्याण और उत्तम सन्तान प्राप्ति के अर्थ ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन करते हुए शास्त्रीय आधार पर किया। आपने लिखा है कि स्वामी शंकराचार्य ने संन्यास धर्म की रक्षा करने के लिये ही यह नाटक रचा था। सज्जनों ! यह है भारत का आदर्श।" पृ० ११।

आप गजब कर रहे हैं जो एक महापुरुष पर मिथ्या दोषारोपण करके पर गृह गमन रूप अनुभव को भारत का आदर्श मान रहे है ? यह संन्यास धर्म की मर्यादा का रक्षण भी विचित्र है कि काम शास्त्र सम्बन्धी सांसारिक भोगों के पराये घर में अनुभव प्राप्त करने वाली आत्मा का उसमें पुनः प्रवेश हो। उस संन्यास वाले शरीर को ६ मास तक सुरक्षित कैसे और किसने रखा था ? वस्तुतः स्वामी शंकराचार्य जैसी पवित्रात्मा ने ऐसे भागों को नहीं भोगा। केवल उन्हें शास्त्रीय ज्ञान के कारण ज्ञात हुआ। अच्छा नाटक लिखा आपने। छी। स्वामी शंकराचार्य जी महाराज परम योगी थे अतः परकाया प्रवेश तो संभव माना जा सकता है किन्तु सांसारिक भोगों के अनुभव के लिये ऐसा करना नहीं माना जा सकता।

यदि प्रहरी जी इस बात की हठ करें कि शास्त्रों में यह संस्कार विज्ञान नहीं है तो निम्न प्रमाणों पर ध्यान देने की कृपा करें—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्राविशदिन्द्रियम्। गर्भोजरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋते न सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।। य० १६।७६

इस मंत्र में मूत्रेन्द्रिय के योनि प्रवेश की आज्ञा वेद ने देकर गर्भ धारण की आज्ञा स्पष्ट शब्दों में दी है। वीर्याधान के शब्द भी इस मंत्र में लिखे हैं इस विधि को ऋतुगामी बनकर ब्रह्मचर्यवस्था संपन्न गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर विवाहानन्तर युवक युवती केवल सन्तान कामनार्थ संपन्न करें। यह भी मंत्र में आदेश है कि ऋतुगमन सन्तान प्राप्ति के लिये हो। विषय-वासना के लिये नहीं।

मुखं सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा [illegible]।
चप्यक्ष पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी।। य० १६।८८
इस मंत्र के आधार पर बृहदारण्यकोपनिषद् के ऋषि ने लिखा कि:—
अथ यामिच्छेत् गर्भंदधीतेति तस्यामर्थं निष्ठाय मुखेन मुखं सन्धायाभिप्राण्यपान्यादिन्द्रियेण ते रेतस रेत आदद इत्येता एव भवति।। बृ० अ०६ब्रा० ३।१०

ऋतुकूल गर्भाधान की उस रति क्रिया में मुख से मुख मिला कर·······
·······।

इत्यादि शास्त्रीय प्रमाणों में पूरी विधि इसलिये लिख दी कि लोग भूल से, मूर्खता से अनर्थ न करें जैसा कि—

पाहि मां परमाहंसते प्रेष्यन्तुजः प्रजाः ।

ता इमे यभितु पापा उपकामन्ति मां प्रभो ।। भागवत ३।२०।२६

भागवत पुराण के इस प्रमाण का अर्थ लिखना उचित नहीं। जैसे इस प्रमाण में पापियों का पाप लिखा है। इन अनर्थों की रोक थाम के लिये वेदादिसच्छास्त्रों में यथार्थ ऋतुगमन विधि का देना आवश्यक था। योनि संकोचन भी वेदविहित होने से इस पवित्र संस्कार का भाग है यथा:—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।। अथ० ५।२५।५
पर्वताद्दिवोयोनेरंगादंगात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्यरेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ।।
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवादधामि ते गर्भं तस्मैत्वामवसे हुवे ।। अथ० ५।२५।१,२

इन समस्त मंत्रों में जो कुछ लिखा है। उसका संक्षेप सत्यार्थ प्रकाश में लिखा गया है। कोई नई बात नहीं लिखी। किन्तु आप तो महीधर के भाष्य को यथार्थ मानते हैं जहाँ अर्थ के अनर्थ करते हुए बहु कुछ लिखा है जिसकी गंध भी वेद-शास्त्रों में नहीं है। अनेक प्रमाणों में से महीधर का एक प्रमाण ही लीजिये।

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्व योनौ स्थापयति। वाजी अश्वो रेतो दधातु, मयिवीर्यं स्थापयतु—रेतोधा वीर्यस्थापयिता ।। यजु० महीधर भाष्य २३।२०

महीधर के इस भाष्य में शिश्नमाकृष्य = आकर्षण शब्द मौजूद है किन्तु पवित्र सन्तान प्राप्ति में घोड़े का क्या काम? अतः यह वैदिक अर्थ नहीं प्रत्युत अनर्थ मात्र है। इस अध्याय में जो अर्थों का अनर्थ महीधर ने किया है परमात्मा आर्यजाति को इससे बचाये।

आपने इस बात पर बहुत बल देकर लिखा है कि ब्रह्मचर्य से संन्यस्त ऋषि को इस विषय पर लिखना उचित नहीं था। किन्तु इसका उत्तर भी आपने अखंड ब्रह्मचारी स्वामी शंकराचार्य की घटना लिख कर स्वयं दे दिया

है कि ब्रह्मचारी भी वेदादि शास्त्र पढ़कर राष्ट्ररक्षा के लिये उसका ज्ञान संसार को दें। पशुओं की अच्छी नस्ल के लिये संसार के मनुष्य बड़ी २ पुस्तकें लिख और सदाचरण से उत्तम नस्ल बना रहे हैं। पुनः मनुष्य समाज का निर्माण उत्तम शास्त्रीय रीति से क्यों नहीं होना चाहिये? महाराज! विचार कीजिये और पक्षपात तथा ईर्षाद्वेष को छोड़ दीजिये। सनातन धर्म तो महाभारत में सभी क्षेपकों को भी वास्तविक मानता है तो वहाँ युधिष्ठिर ने अखंड ब्रह्मचारी भीष्मपितामह से यह क्योंकर पूछा कि:—

स्त्रीपुंसयोः संप्रयोगे स्पर्शः कस्याधिको भवेत्।
एतस्मिन्संशये राजन् यथावद्वक्तुमर्हसि॥

स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग में अधिक आनन्द प्राप्ति किसे होती है? हे महाराज! मेरे इस संशय को दूर करने के लिये आप यथावत् उत्तर दें।

युधिष्ठिर के इस प्रकार पूछने पर अखंड ब्रह्मचारी भीष्मजी ने कहा—

स्त्रियाः पुरुषसंयोगे प्रीतिरभ्याधिका सदा।
रमिताभ्याधिकं स्त्रीत्वेसत्यंवैदेवसत्तम।
एवं स्त्रियाः महाराज अधिका प्रीतिरुच्यते॥

—अनुशासन पर्व १२।१,५२,५४

भीष्म जी ने स्त्रियों के पक्ष में निर्णय दिया। पूरे श्लोकों के अर्थ लिखना उचित नहीं। भीष्म जी ने यह कैसे बता दिया? और युधिष्ठिर जैसे गृहस्थी को एक अखंड ब्रह्मचारी महापुरुष दादा से पूछने की क्या आवश्यकता पड़ी। हम आर्य लोग तो ऐसी सैकड़ों महाभारत और पुराणों की कथाओं को वेदों तथा शास्त्रों के विरुद्ध समझते हैं किन्तु आपका विश्वास तो अक्षर २ पर है इसका उत्तर आपके पास कुछ भी न बन सकेगा। शीशे के महल में बैठकर फौलादी किले पर पत्थर फेंकना शोभा की बात नहीं। भगवान् के नाम पर सनातन धर्म के माने ऐसे ग्रन्थों का संशोधन वेद शास्त्र के आधार पर कीजिये तो आप भी आर्यसमाज के उपकार को मानने लग जायेंगे और ऋषि दयानंद के सुधारक प्रयत्नों का धन्यवाद करेंगे। परमात्मा आपको सत्य ग्रहण की शक्ति दें कि आप ऋषि के सम्बन्ध में लिखे यह शब्द वापस लें कि मैं स्वामी दयानंद को पतित संन्यासी घोषित करता हूँ…………।" अब तो हमें स्वामी जी के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है।" पृ० ११,१२

नकले कुफ्र कुफ्र न बाशद

परमात्मा से डरो। उसकी चक्की धीरे चलती है किन्तु पीस के रख

देती है । इन शब्दों के वापस लेने और इन पर प्रायश्चित करने में ही आपकी आत्मा का भला है । मानो न मानो मरजी हजूर की हम तो नेकी बदी समझाए देते हैं ।

(१६) गन्दगी का पिटारा

स्वामी केशव पुरी ने अपनी इस बदनाम पुस्तक में "नियोग बनाम व्यभिचार" का शीर्षक लिखकर गन्दे २ उपहास किये हैं । यह उपहास बाजारू हैं । एक संन्यासी को शोभा नहीं देते । धर्म का निर्णय इन जैसी बातों से कोसों दूर है । शोक है कि इस गन्दी पुस्तक के गन्दे उपहासों को श्री शंकराचार्य जी अपना शुभाशीर्वाद दे रहे हैं । क्योंकि पुस्तक के टाईटल पर ही लिखा है कि "जगद्गुरु का आशीर्वाद" :

'इस पुस्तिका को सर्दैव मेरे शुभाशीर्वाद हैं ।' —श्री निरंजन

संभव है कि उन्होंने इस पुस्तक को पढ़े बिना यह आशीर्वाद दिया हो ? यदि ऐसा है तो सर्दैव मेरे शुभाशीर्वाद का क्या अभिप्राय हो सकता है ? सर्दैव शब्द का अभिप्राय तो यह है कि उन्होंने इस पुस्तक को अवश्य पढ़ा या सुना है । जिसमें "मैं फागुन की मस्ता" और "बारहवां छोड़ तेरहवां तू" के शीर्षकों से गन्दे मजाक किये हैं । क्या धर्म का निर्णय इस गन्दे मजाक के शब्दों से होगा ? मेरी सम्मति तो यह आज्ञा नहीं देती कि मैं ऐसे गन्दे शब्दों को यहां पर उद्धृत करूं । स्पष्ट है कि यह पुस्तक तुरन्त जब्त होने के योग्य है तथा लेखक और प्रकाशक पर अभियोग चलाना सरकार का कर्तव्य हो जाता है । क्योंकि इस पुस्तक में आधुनिक युग के संसार के सबसे बड़े महापुरुष ऋषि दयानन्द जी के विरुद्ध गन्दे शब्दों का बार २ प्रयोग किया गया है, और वैदिक धर्म के मान्य सिद्धान्तों पर गन्दे और कमीने मजाक किये गये हैं ।

(१७) नियोग बनाम आपद्धर्म

महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थ प्रकाश में से आपने यह शब्द उद्धृत किये हैं कि—

"स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह या नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना ।"

ऋषि दयानन्द ने वेद के आधार पर नियोग को आपद्धर्म माना है । जिसके लिये वेद का प्रमाण भी उद्धृत है कि—

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ ऋ० १०।१८।८

"हे (नारि) विधवे ! तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभि जीव लोकम्) जीते हुए पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्त ग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बंध के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चय युक्त (अभि, सम्, बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे।"

नहले पर दहला पृ० ८२

मन्त्र में स्पष्ट रूप से दूसरे विवाह की आपत्तिकाल में विधवा को आज्ञा दी गई है। जिसे सनातन धर्मी नहीं मानते थे। किन्तु अब इस सिद्धान्त को सनातन धर्मी जगत् ने विधवा विवाह के रूप में स्वीकार कर लिया है और सरकार का कानून भी विधवा विवाह के पक्ष में बन चुका है। वेद में स्पष्ट लिखा है कि—

ऋ० १०।४०।२

"विधवेव देवरम्"

इस मन्त्र पर निरुक्त में लिखा है कि—

'देवरः कस्माद् द्वितीय वर उच्यते।'

कि दूसरे वर को देवर कहते हैं।

पुनः लिखा है कि—

"अपि वा धव इति मनुष्य नाम तद्वियोगाद्विधवा।" निरुक्त ३।१३

धव मनुष्य का नाम है उसके वियोग से विधवा शब्द की सिद्धि होती है। अतः वेद में विधवा विवाह सिद्ध है। श्री [illegible] भी इसी मन्त्र पर निरुक्त का प्रमाण उद्धृत करते हुए विधवोद्धार का समर्थन करते हैं। निरुक्त के टीकाकार श्री दुर्गाचार्य ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है। महा महोपाध्याय शिवदत्त शास्त्री ने भी निरुक्त पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि विधवा स्त्री का दुराचार से सन्तान प्राप्त करना अधम गति है अतः उसे (अधम गति से बचाने के लिये) पुनर्भूपति से सन्तान प्राप्ति की आज्ञा का विधान है।

पुनर्भूपति नियुक्त पति कहलाता है। जो ऋतु काल में केवल एक या दो सन्तान उत्पन्न करने का अधिकारी है। अतः ऋषि दयानन्द जी ने मनु धर्म शास्त्र के प्रमाण देकर [illegible] के नियोग प्रकरण में लिखा है कि—

देवराद्वा सपिंडाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ मनु ९।५८, ५९

यहां इन श्लोकों में मनु धर्मशास्त्र में स्पष्ट रूप से सन्तान क्षय में ही नियोग की आज्ञा का विधान करके लिखा है कि यह आपद् धर्म है। यदि सन्तान हो तो उनका सम्बन्ध पाप माना जायगा। सन्तान के नष्ट होने पर ही उन्हें नियोग की आज्ञा होगी अन्यथा नहीं।

अतः नियोग को विवाह की भांति ही शास्त्रकार धर्म और आपद्धर्म मानकर दुराचार से बचने का उपाय बताते हैं।

(१८) एक या दो सन्तान

नियुक्त पति पत्नी को शास्त्रों ने केवल एक सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी है। कुछ आचार्यों ने दो की आज्ञा भी दी है। जैसा कि मनु धर्मशास्त्र में लिखा है कि:—

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तोवाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥६०॥
द्वितीयमेके प्रजननं मन्यन्ते स्त्रीषुतद्विदः ॥६१॥ मनु० ९।६०, ६१

विधवा में नियुक्त पति ऋतु कालानुसार घृत शरीर युक्त, मौनावलंबन करते हुए केवल एक पुत्र की उत्पत्ति करे। दो की नहीं। कुछ आचार्य दो की आज्ञा भी प्रदान करते हैं।

ऋषि ने इसी शास्त्रीय सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए केवल एक पुत्र प्राप्ति के लिये आपद्धर्म रूप से नियोग को वेद के आधार पर स्वीकार किया है। अन्यथा नहीं। ऋषि के अपने शब्द यह हैं कि :—

"जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये।"

—सत्यार्थप्रकाश समु० ४

यह नियोग केवल एक और अधिक-से-अधिक दो सन्तानों की प्राप्ति के लिये ही विहित है। कभी २ आचार्यों ने दो, दो की अनुमति भी स्वीकार की है। किन्तु यह सब बात आपत्काल के आधीन और बिरादरी की आज्ञा पर आधारित हैं। नियुक्त स्त्री पुरुष केवल ऋतुगमन के लिये एकत्र होते हैं। उसमें वे मौन रहते हैं और कोई बात करना भी धर्म विरुद्ध है तथा काम

वासना पर काबू पाने का उपाय भी शास्त्र में विहित है। केवल एक सन्तान प्राप्ति द्वारा आपत्ति को टालना ही नियोग धर्म की प्रवृत्ति का कारण है। अत. मनु महाराज ने लिखा है कि—

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथा विधि।
गुरु वच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम्॥६२॥
नियुक्तौ यौ विधिं हित्वावर्तेयातां तु कामतः।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषा गुरु तल्पगौ॥६३॥ मनु ९।६२,६३

विधवा में नियोग के लिये यथाविधि निवृत्त होने पर दोनों, गुरु और पुत्र वधु की भांति परस्पर बर्ताव करें। जो स्त्री पुरुष नियोग की आज्ञा का उल्लघन कर के काम वासना के अधीन व्यवहार करें वह दोनों पतित माने जाकर गुरु पुत्रवधू के दुराचारवत् दंड के भागी बनें।

अतः नियोग का सिद्धान्त सर्वसाधारण के लिये नहीं है। केवल आपद्धर्म है और एक या अधिक से अधिक दो सन्तान की प्राप्ति के लिये है जिसकी व्यवस्था राष्ट्र और समाज के आधीन है। कभी २ यह व्यवस्था दो २ के लिये भी हो सकती है।

(१९) सन्तान की सत्ता

वेद में अखंड ब्रह्मचर्य की अपार महिमा वर्णित है। पुनरपि सारा संसार इसका अनुगामी नहीं हो सकता। अत गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति हुई है और अपद्धर्म में नियोग की भी आज्ञा वेद शास्त्र प्रतिपादित है। गृहस्थ और नियोग में कम-से-कम सन्तान की आज्ञा है क्योंकि वेद में बहुत सन्तान की निन्दा भी मौजूद है। लिखा है कि:—

बहुप्रजा निऋतिमाविवेश। अथ०

बहुत सन्तान वाला व्यक्ति दुःख रूपी नरक का भागी होता है। सदैव कष्ट में रहता है। सन्तान संख्या पर भी नियन्त्रण की आवश्यकता निर्विवाद है। किन्तु कृत्रिम उपायों से नाना-व्याधियों और दुराचार को प्रवृत्त करना युक्ति-युक्त नहीं। अतः ब्रह्मचर्य ही इसका राम बाण-महौषध है। वेद में दश तक सन्तान प्राप्ति का अधिकार दिया गया है किन्तु वह अन्तिम अवधि है। अतः सबके लिये नहीं है। सामर्थ्यवान् गृहस्थ जन भी अधिक सन्तान उत्पन्न करके निन्दा के पात्र बनते हैं। नियोग में तो बहुत ही कड़ा नियम है कि नियोग का अधिकार सभी स्त्री पुरुषों को नहीं देकर किसी राष्ट्रीय आपत्ति को टालने के लिये ही राष्ट्र सभा इसका निर्णय कर सकती है। वह भी

केवल एक सन्तान तथा अधिक-से-अधिक दो सन्तान का नियम है। यदि इनका क्षय हो जाय और वह किसी प्रकार से मृत्यु के गाल में चले जायें तो अन्य सन्तान की आज्ञा की व्यवस्था समाज और राष्ट्र दे सकता है। जिसकी अवधि दस के अन्तर्गत ही निहित है। इसी प्रकार से समाज तथा राष्ट्र सभा किसी राष्ट्रीय आपत्ति के निराकरणार्थ आपद्धर्म से सन्तान परिक्षय तथा पति परिक्षय होते जाने की अवस्था में ही अधिक-से-अधिक दश २ की आज्ञा दे सकती है।

(२०) बच्चे पैदा करने की मशीन

प्रहरी महोदय उपहास करते हुए लिखते हैं कि:—

अगर कहीं तीन सन्तान हो गयीं तब बंटवारा कैसे होगा ? टुकड़े करके ? दूसरी बात यह है कि भारतीय परम्परा नारी को जगदम्बा (देवी) मानने की रही है किन्तु स्वामी दयानंद ने उसको बच्चे पैदा करने की मशीन मान लिया।"

नहले पर दहला पृ० १३

अपने शब्दों का ठीक उत्तर स्वामी केशव पुरी अपने ही शब्दों में अपने ही ढंग से लेना चाहते हैं तो भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ अध्याय ६१ को पढ़ें। जहाँ बृहस्पति की स्त्री तारा को चंद्र ले गया था और ब्रह्मा ने तारा बृहस्पति को वापिस दिलवायी तो गर्भस्थ बालक पर चंद्र और बृहस्पति का झगड़ा हो गया कि यह किसको दिया जायगा। क्योंकि युक्ति दोनों ओर से दी गई। अब प्रहरी जी ही बतायें कि इनके शब्दों के आधार पर बटवारा कैसे होगा ? टुकड़े २ करके ? शोक। महाशोक धर्म विषय पर लिखते हुए शीशे के महल में बैठकर फौलादी महल पर पत्थर गिराने से अपना ही नाश होगा।

मशीन की बात भी क्या ही विचित्र कही है। आपके ही सिद्धान्तों की कमजोरी का चित्र ठीक आपके सामने है, वह हम पर लाद रहे हैं क्या ? आपके ही मान्य ग्रन्थों में लिखा है कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे तथा श्री कृष्ण जी ने शंकर से पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की कि:—

सोऽयं माया विमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो ! देवी भागवत ४।२५।५३

तब शिवजी ने वर दिया कि:—

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्रा शत्रुनिषूदना। स्त्रीणांषोडशसहस्रं भविष्यन्ति शताढ्‌कम्। तासु पुत्रा दश दश भविष्यन्ति महाबलः।"

देवी भागवत ४।२५।५७,५८

यह आपका सिद्धान्त है। आप ही इसे समझ लीजिये कि

१६०५०×१० = १६०५०० एक लाख साठ हजार पांच सौ सन्तान की प्राप्ति संभव भी है या नहीं ?

मैं प्रहरी जी से विनीत प्रार्थना करता हूँ कि टुकड़े २ करना तथा स्त्री मशीन इत्यादि के शब्दों को वापस लें तो अच्छा है।

(२१) जलती लाश

प्रहरी जी लिखते हैं कि :—

पाठक ! ध्यान दीजिये। वेद मंत्र का अर्थ बताते हुए दयानंद जी ने लिखा—हे विधवे ! तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (इसका मतलब हुआ—यह जो सामने लाश पड़ी हुई है) इसकी आशा छोड़ करके अन्य किसी पुरुष से नियोग करले, यानी कि पहले नियोग हो और बाद में लाश फूंकी जाय। नहीं तो फिर शोक के समय यह उपदेश देने का क्या मतलब ? आगे महाशय जी लिखते हैं कि············" नहले पर दहला पृ० १३

"यानी कि पहिले नियोग हो और बाद में लाश फूंकी जाय" यह और इसी प्रकार के शब्द लिखकर स्वामी केशवपुरी ने सत्य का मुख तोड़कर रख दिया है। पौराणिक पंडित सदैव स्वामी जी महाराज का अपमान करने की दृष्टि से ही स्वामी जी को महाशय जी लिखा और कहा करते हैं तो आपने भी ऐसा ही किया है। पुराणों में भी किसी ऋषि मुनि और महापुरुष को प्रायः अपमानित करने से नहीं छोड़ा गया यही शिकायत हमें आप लोगों से भी है। जब आप अपने माने हुए ऋषियों की गति पुराणों में देखते हैं तो ऋषि दयानंद का अपमान करने से भी आप लोग नहीं चूकते। यह आप की परम्परा आपको ही मुबारक हो।

रही यह बात कि लाश सामने पड़ी हो और उसकी विधवा स्त्री को ऐसा कहा जाय। यह अर्थ ऋषि दयानंद के नहीं हैं। व्याकरण शास्त्र का नियम है कि—

वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा। अष्टा० ३।३।१३१

वर्तमान के समीप समय का व्यवहार भी वर्तमान की भांति होता है अतः कुछ समय बीत जाने पर समाज और राष्ट्र का नियम सन्तानाभाव में शोक विह्वला पतिविहीना स्त्री के लिये ही यह व्यवस्था करे। यह वेद के शब्दों में ही प्रगट किया।

किन्तु आपके माने हुए ग्रन्थों में इस मंत्र का विनियोग अन्त्येष्टि में किया गया है जैसा कि आश्वलायनगृह्य सूत्र में लिखा है। इस मन्त्र का श्मशान में

अन्त्येष्टिकर्म का विनियोग गलत है। क्योंकि मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय पितृमेध है और पितरों की तृप्ति प्रजा से होती है जैसा कि शिवपुराण में भी लिखा है—

पितरः प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत् ॥

शिवपुराण कैलास संहिता अ० १२ श्लोक २६

पितर प्रजा से तृप्त होते हैं ऐसा श्रुति कहती है। अतः सन्तान प्राप्ति पितृमेध है। श्मशान कर्म का नाम पितृमेध नहीं हैं, उसे नरमेध कहते हैं।

आश्वलायन गृह्यसूत्र तो निःपुरीषकरणा और अनुस्तरणी के सिद्धान्त को मानता है जो वेद के सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है कि गाय या बकरी के एक २ अंग को काट कर मृत शरीर उसी २ अंग पर रखा जाय और उसकी चर्म से मुर्दे को ढांपकर उसे मंत्रों के साथ स्वाहान्त अग्निदग्ध किया जाय तो:—

स एवं विदाह्यमानः सहैव धूमेन स्वर्गं लोकमेतीति हि विज्ञायते ॥

आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० ४ कं० ४

इस प्रकार से जीवात्मा यज्ञ धूम सहित स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है ऐसा जाना जाता है।

ऋषि दयानन्द ने इस पोपलीला का सुधार करके मंत्र का यथार्थ विनियोग पितृमेध में करके उसे सन्तान प्राप्ति में लगाया है। किन्तु सायणाचार्य ने तो तैत्तिरीयारण्यक में इसी मन्त्र के अर्थ श्मशान परक करते हुए लिखा है कि:—

हे नारि त्वं इलासु गतप्राणं एतं पतिं उपशेषे उपेत्य शयनं करोषि उदीर्ष्व अस्मात्पतिसमीपादुत्तिष्ठ जीवलोकमभि जीवन्तं प्राणिसमूहमभि लक्ष्य एहि आगच्छ त्वं हस्त ग्राभस्य पाणिग्राहवतः दिधिषोः पुनर्विवाहेच्छोः पत्युः एतज्जनित्वं जायात्वं अभिसंबभूय अभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि।

तैत्तिरीयारण्यक ६।१।१४

हे नारी ! तू इस विगत प्राण, मृत पति के साथ सोती है, इस पति के समीप से उठ और जीते प्राणिसमूह में से अभिलक्ष्य करके आ और तू पुनर्विवाह की इच्छा वाले पति को सन्तान प्राप्ति के लिये सम्यक् प्राप्त हो।

श्री सायणजी के इन अर्थों ने स्वामी केशव पुरी के नहले पर दहला को बेकार कर दिया और चारों खाने चित्त गिरा दिया।

अपना ही दोष अपने घर में से ही निकला। ऋषि दयानन्द पर तो व्यर्थ

दोष देते हैं क्योंकि उस महात्मा ने भी वेदों के मन्त्रों को हटा कर यथार्थ संगति लगा दी। अब आपने जितने उपहास ऋषि दयानन्द पर किये वह अपने पर लगाईये तो इन शब्दों का वास्तविक मूल्य आपको ज्ञात हो जाय।

आपके लिये ही किसी कवि ने लिखा था कि—

नासिहा ! मत कर नसीहत मुझे दिल मेरा घबराये है।
मैं समझूं हूं उसे दुश्मन जो मुझे समझाए है॥

(२२) इतिहास को साक्षी

"कहिये महानुभावो ! देख लिया न आपने नियोग का तमाशा, स्वामी दयानन्द ने मुसलमानों के निकाह पर वेद का मुलम्मा चढ़ा दिया जिससे कि हिन्दुओं को मनमाना व्यभिचार करने का परमिट मिल जाय। —पृ० १५

स्वामी केशव पुरी मुसलमानों के निकाह के सम्बन्ध में ऐसे गन्दे शब्द लिखते हुए भी इससे आगे अपनी पुस्तक के इसी पृष्ठ १५ पर मौलवी अंग्रेजी अली वां मजिस्ट्रेट का कोई निर्णय लिखते हैं जिसमें ऋषि दयानन्द को मजहबों की निन्दा करने वाला बताया है तथा डाक्टर थीबो योरोपियन ने ऋषि के विरुद्ध निर्णय दिया। यह तथाकथित निर्णय यही सिद्ध करते हैं कि यह दोनों महर्षि के क्रान्तिकारी प्रोग्रामों से जले-भुने थे क्योंकि ऋषि दयानन्दजी वेद के आधार पर राष्ट्र को एकता के सूत्र में ग्रथित करने के लिये यत्नशील थे। अतः यह इन दोनों को एक आँख भी सह्य नहीं हो सकते थे। क्योंकि वेद के सच्चे प्रचार से प्रभावित भारतीय लोग इनके मजहबी चुंगल में नहीं फंस सकते थे।

आप ऋषि दयानन्द की इतनी चिन्ता न करें। हम ईसाई मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थों में स्वयं निपट चुके हैं, सहस्रों के विचार बदल चुके हैं। आर्यसमाज का यह क्रम बन्द नहीं होगा। आप अपनी चिन्ता करें जिनके देवी-देवताओं पर ईसाई पादरी और कुछ मौलवी अपनी पुस्तकों में बड़े २ लांछन लगा चुके हैं और आप से उनका उत्तर नहीं बन सका। सनातन धर्म के देवी-देवताओं के विरुद्ध लिखे गये ऐसे ग्रन्थ अभी तक भारत में बिकते चले आ रहे हैं। पौराणिक पण्डितों में साहस होता तो उनका उत्तर देते। ऐ काश ! कि आपकी बुद्धि इस सच्चाई को समझ सके कि कुछ एक विधर्मियों की दृष्टि में आर्यसमाज इसलिये खटकता है कि हम उनके भारत को ईसाई आदि बनाने के स्वप्न को साकार होने देने में रुकावट हैं। वह आपको आर्यसमाज के विरोध करने में उत्साह देते रहते

हैं। क्योंकि उनका स्वार्थ इसी में निहित है।

पूज्य महात्मा गांधी जी ने एक बार शुद्धि और शास्त्रों की जवाबी कार्यवाही के कारण आर्यसमाज को असहिष्णु कह दिया था। आपने इसे संभाल कर रखा और पौराणिक पण्डित महात्मा गान्धीजी की उस व्यवस्था को मातृ-दुग्धवत् पी गये जो उन्होंने मूर्तिपूजा के विरुद्ध दी थी कि मेरा भगवान् मेरे हृदय मन्दिर में मौजूद है। मैं मूर्ति में उसकी पूजा करनी उचित नहीं समझता।

आपने महात्मा गांधी जी के सम्बन्ध में इसी पुस्तक में यह भी लिखा है कि—

"शायद यहां यह बताने की जरूरत नहीं कि महात्मा जी बहुत कुछ अनुभव करने के बाद ही किसी भी विषय में अपनी राय कायम किया करते हैं, इसलिये जीवन भर में उन्हें अपनी राय को बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

पृ० २१

महात्मा गांधी जी का निर्णय आप के समीप उनके अनुभव के आधार पर होने से यथार्थ सत्य होता है, तो आप की इस पुस्तक के मुख्य विषय मूर्ति-पूजा पर उनका निर्णय आपको अवश्य स्वीकार करना चाहिये। जो उन्होंने मद्रास की देवियों को फरवरी १९४६ में दिया था। उन्होंने कहा था कि—

"मेरा भगवान दिल में रहता है, पत्थरों में नहीं।

मद्रास १० फरवरी—आज कुछ देवियों ने गांधी जी को मुरलीधर कृष्ण और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां पेश कीं। इस अवसर पर गांधी जी ने कहा कि आप नहीं जानतीं कि मेरा भगवान् पत्थरों और अन्य मूर्तियों में नहीं रहता।……मैं इन्हें देवी-देवता नहीं समझता। मैं उसकी पूजा करता हूं जो मेरे दिल में रहता है और सभी मनुष्यों के दिल में रहता है। मैं इन मूर्तियों को इसलिये स्वीकार करता हूं कि इनको हरिजन फंड के लिये नीलाम कर दूंगा।" प्रताप लाहौर २ फरवरी १९४६ (युनाईटिड प्रेस)

कहिये महाराज ! अब आपकी क्या गति और सम्मति है। महात्मा जी के चिर काल के सोचे-समझे अनुभव को आप स्वीकार करते हैं या नहीं? महात्माजी ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का खंडन कभी नहीं किया। इस बात को आप सदैव स्मरण रखें। आर्यसमाज ने महात्माजी के ईसाई मुसलमानों को प्रसन्न करने के हेतु कहे गये आर्यसमाज सम्बन्धी कुछ शब्दों का भी घोर प्रतिवाद किया था। क्या आप नहीं जानते कि यह सब कुछ

भारतीय आर्यजाति की रक्षा के लिये ही आर्यसमाज ने किया। यदि ऐसा करना अनुचित है तो महामना मदनमोहन मालवीय जी भी तो मुस्लिम पोषक नीति से नाराज होकर महात्माजी से पृथक् हो गये थे। तब उनको आप क्या कहेंगे ?

कितने ही मुसलमानों ने मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद के शास्त्रार्थों में पौराणिकों के विरुद्ध व्यवस्था दी। उनको आप क्यों छिपाते हैं। कोट भट्टू में सरदार राञ्झा खान आनरेरी मजिस्ट्रेट ने अवतारवाद के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बन कर मेरे पक्ष में निर्णय दिया था और पं० श्री कृष्ण शास्त्री के विरुद्ध अपना लिखित निर्णय घोषित किया था। यह शास्त्रार्थ पुस्तक रूप में छापा गया था। उसमें सरदार रांझा खान का निर्णय भी छपा था। झोक उतरा जिला डेरा गाजी खान के शास्त्रार्थ में श्री मुहम्मद कैफी ने नियोग के शास्त्रार्थ में मेरे पक्ष में घोषणा की थी। तथा वहां की सनातन धर्म सभा के प्रधान हकीम टेकचन्दजी ने भी आर्यसमाज को विजयी घोषित किया था। जिससे पौराणिक विद्वान् रात में ही वहां से भाग खड़ा हुआ। सालवन जिला करनाल के दोनों शास्त्रार्थों में पं० माधवाचार्य की पराजय और आर्यसमाज की जीत घोषित हुई थी। इसी प्रकार धुनौंदा (महेश गढ़) में संस्कृत के लिखित शास्त्रार्थ तथा हिन्दी के शास्त्रार्थों में प० माधवाचार्य की पराजय और आर्य समाज की जीत हुई थी। अन्य अनेक शास्त्रार्थों में पौराणिक पंडितों को आर्यसमाज के आगे पराजित होना पड़ा। यह सब प्रमाण भी पुस्तकों और तत्कालीन समाचार पत्रों में भरे पड़े हैं। इनसे आंखें मूंद लेना न्याय नहीं है।

शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह सम्बन्धी पुस्तक में तो मूर्तिपूजा सम्बन्धी चर्चा ही चलानी चाहिये थी। विषयान्तर में जा कर गाली-गलौज से काम लेना आपके लिये शोभादायक नहीं था। रही नियोग की बात। जब पौराणिक पंडित चाहें, इस विषय पर शास्त्रार्थ कर सकते हैं। आर्य समाज प्रतिसमय समुद्यत है। आप एक दो विधर्मी लोगों के तथाकथित विरोध को आर्य समाज के विरुद्ध उछालने के स्थान पर आर्य ऋषियों के इतिहास की साक्षी को निर्णय का आधार स्वीकारें तब तो बात बने। लीजिये कुछ उदाहरण आपकी सेवा में समुपस्थित किये ही देता हूँ। वेद महाभारत तथा मनु आदि धर्म शास्त्रों में नियोग को धर्म कहा है :—

(१) धर्मं पुराणमनुपालयन्ती०। अथर्व० १८।३।१

पुरातन धर्म की पालना करती हुई स्त्री को नियोग की आज्ञा है।

(२) इति धर्मो व्यवस्थितः। मनु० ३।१२०

नियोग धर्म है।

(३) तत्तं धर्मं प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राजि सनातनम्।

आदि पर्व १०३।२६

भीष्म ने सत्यवती से कहा कि मैं तुम्हें क्षत्रियों का सनातन धर्म कहता हूं जो नियोग है।

(४) धर्ममुद्दिश्यकारणं ।।४०।। दृष्टं ह्येतत् सनातनम् ।।४१।।

आदिपर्व १०५।४०,४१

नियोग सनातन धर्म है जो दृष्ट है।

ऊपर के सभी प्रमाणों में नियोग का प्रकरण चल रहा है। नियोग की चर्चा में ही सर्वत्र इसे धर्म कहा है।

(२३) नियोग आज्ञा से होता है

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् । ऋ० १०।१०।१०

इस मन्त्र में वैराग्यवान् पति अपनी स्त्री को अन्य पति से सन्तान प्राप्ति की आज्ञा दे ऐसा विधान है।

मन्नियोगान्महाबाहो धर्मंकर्तुं महसि । आदि पर्व १०३।११

सत्यवती ने भीष्म को अंबिका तथा अंबालिका में नियोग की आज्ञा दी उनके इन्कार पर महर्षि व्यास ने नियोग द्वारा दोनों में धृतराष्ट्र और पांडु को पैदा किया।

इसी प्रकार से महाभारत आदि पर्व में महर्षि व्यासजी ने नियोग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरःपुत्रकाम्यया, सपिंडो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ।। गरुडपुराण आचाराध्याय ९५।१६

गरुड पुराण के इस श्लोक में नियोग की स्पष्ट आज्ञा है कि गुरु की आज्ञा से सपिंड अथवा सगोत्र देवर घृत से चुपड़ा हुआ होकर पुत्र कामना से पुत्र रहित स्त्री में ऋतुगमन करे।

(२४) नियुक्त पति

आर्यजाति के महापुरुष सदैव आपद् धर्मरूप से नियोग धर्म का पालन करते रहे हैं। देखिये:—

(१) अंबिका अंबालिका के नियुक्त पति महर्षि व्यास हुए, पांडु तथा धृतराष्ट्र की उत्पत्ति हुई।

(२) माद्री के नियुक्त पति अश्विनीकुमार हुए, नकुल तथा सहदेव उत्पन्न हुए। आदि पर्व १२३।१६

(३) कुन्ती के नियुक्त पति धर्म-वायु तथा इन्द्र हुए। धर्म से युधिष्ठिर, वायु से भीम और इन्द्र से अर्जुन पैदा हुआ। तथा सूर्य के समागम से कर्ण पैदा हुआ। महाभारत में सूर्य के साथ समागम का शब्द भी लिखा है :—

संगमो मम। आदि पर्व १११।१३

(४) द्रौपदी के पांच पति एक साथ होना सनातन धर्मियों के लिये बहुत बड़ी आजमाईश है। देखो आदि पर्व ६३।१२२

(५) गौतम की स्त्री जटिला के सात पति। आदि पर्व १६६।१४

(६) मुनिजा के दस पति। आदि पर्व १६६।१५

(७) दिव्यादेवी के २१ पति। पद्मपुराण भूमि खंड ८५।६६ यह सब मरते जाने के कारण हुआ।

(२५) महात्मा गांधी की प्रशंसा

महात्मा गांधी जी ने अपनी पोती और श्री महादेव देसाई की बहिन के विवाह संस्कार पर उनको जो उपदेश दिया उसका सार यहां दिया जाता है:-

यदि सन्तान की आवश्यकता हो तो धर्मभावना से विवाह करना आवश्यक है। भोग-विलास के लिये किया गया विवाह तो केवल व्यभिचार है.........

तुम्हारा सारा संस्कार पवित्र अग्नि के सम्मुख हो, तुम्हारे अन्दर जो भी कामवासना हो उसे यह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।.........................

मैंने महाभारत में जो कुछ पढ़ा है मुझ पर तो उसका दिन प्रति दिन अधिक-से-अधिक प्रभाव पड़ता जा रहा है। इसमें व्यास के नियोग करने का वर्णन है। व्यास को सुन्दर नहीं बताया गया। प्रत्युत वह तो सर्वथा विपरीत थे। देखने में वह कुरूप थे। प्रेम दिखाने के हाव-भाव नहीं बताए गये। भोग से पूर्व उन्होंने अपने सारे शरीर पर घी चुपड़ लिया था। उनका यह कार्य विलासभाव पूरा करने के लिये नहीं, सन्तान की इच्छा से किया गया था। सन्तान की इच्छा तो स्वाभाविक है। और जब एक बार यह इच्छा पूरी हो जाय तो ब्रह्मचारी रहना चाहिये। मनु ने भी पहिली सन्तान को धर्म से और पश्चात् की सन्तान को कामवासना से बताया है।

आर्य गजट लाहौर: ५ मई १६४५ पृ० ७

पूज्य बापूजी ने [illegible] पर शुभविवाह का आदर्श बड़े मार्मिक शब्दों में किया है।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी महाराज ने अपने एक पत्र में लिखा था कि नियोग करने वाले स्त्री पुरुष दो से अधिक सन्तान उत्पन्न करें तो वह दुराचार माना जाकर दंडनीय होगा। अतः ऋषि के प्रति आपके शब्द सर्वथा मिथ्या हैं।

सत्यार्थप्रकाश में भी लड़का गोद लेने का विधान लिखा है। नियोग को अन्तिम अवस्था माना है। जिसकी आज्ञा राष्ट्र और समाज के अधीन है।

(२६) नहले पर दहला

स्वामी केशवपुरी की पुस्तिका असामयिक, अनुपयुक्त और भ्रान्तियों से भरपूर है। उनमें साहस होता तो वेद मन्त्रों द्वारा ईश्वर की मूर्ति और उसकी पूजा का विधान सिद्ध करते। वह अपने प्रसंग से बाहिर चले गये हैं। अन्यथा मूर्तिपूजा के प्रकरण में नियोग का प्रकरण लाने का क्या काम था? स्वामी केशवपुरी महात्मा गांधी को प्रमाण मानते हैं। उन्होंने तो नियोग धर्म को आपद्धर्म मानकर सन्तान प्राप्ति के लिये इसका समर्थन किया है। प्रमाण भी महर्षि व्यासजी महाराज के नियोग करने का दिया है। सनातन धर्म तो महर्षि व्यासजी को अपना आदर्श मानता है अतः अब नहले पर दहला का सारा नशा उतर जाना चाहिये। जबकि वेद, धर्म शास्त्र तथा पुराण सभी नियोग के आपद्धर्म होने के समर्थक हैं।

अपनी पुस्तिका मे स्वामी केशवपुरी ने एक शीर्षक यह भी दिया है कि:—

क्या पुराण चंडूखाने की गप्प हैं? मुझे बड़ा शोक है कि लेखक महोदय अपने ही धर्म पुस्तकों के सम्बन्ध में ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। मैं तो उस अनोखी सभ्यता का प्रतिवाद करता हूं। चाहे पुराणों पर मेरा विश्वास कुछ भी नहीं। किन्तु किसी भी ग्रन्थ का नाम लेते हुए ऐसे शब्दों के प्रयोग को मैं सभ्यता नहीं मानता। पौराणिक भाईयों को भी इन शब्दों का प्रतिवाद ही करना चाहिये। जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपने आशीर्वाद का पात्र ऐसी पुस्तिका को समझा जो महर्षि दयानंद जैसे माने हुए आर्यजाति के महापुरुष को गालियां देने के साथ २ पुराणों के लिये भी अपशब्दात्मक शीर्षक से अपनी सभ्यता का प्रमाण दे रहे हैं। मानना चाहिये कि जगद्गुरु से भूल हो गई है। अन्यथा इस पुस्तक में गाली देने और भ्रान्तियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मैं आशा करता हूं कि सनातन धर्मी भाई मेरे साथ सर्वथा सहमत होंगे।

इस लीर्गक के आधीन स्वामी केशवपुरी ने पूरे दस पृष्ठों में यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि रुक्मिणी का भाई रुक्मी मोहवश रुक्मिणी के विवाह में पशु हत्या के साथ-साथ एक लाख गाय मारने की प्रस्तावना अपने पिता राजा भीष्मक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। किन्तु राजा ने इस प्रस्तावना को स्वीकार नहीं किया। अतः यह केवल एक मोहापन्न व्यक्ति की ही बात है। किन्तु पुराण में तो यह भी लिखा है कि—

एतेषां मांसं पक्वं च भोजनार्थं च कारय ।।६२
द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां ....।।६४
राजा संभृतसंभारो बभूव सत्वरं मुदा।
निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार च सुताज्ञया।।६५

ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म ख० ४, अध्याय १०५, श्लोक ६२-६५

इस प्रमाण में राजा के प्रसन्न चित्त होकर रुक्मी की बताई सर्व सामग्री जुटाने का वर्णन है। तथा द्वारका में कृष्णजी को बुलाने के हेतु एक द्विज भेजने की चर्चा भी है। अतः स्वामी केशव पुरी का दस पृष्ठों का परिश्रम व्यर्थ गया है जिसमें वह पुराण का एक शब्द भी प्रस्तुत नहीं कर सके कि रुक्मी की प्रस्तावना को राजा ने नहीं माना। अतः पुराणों को वेद विरुद्ध मान लेने में ही आर्यजाति का उद्धार सम्भव है, अन्यथा नहीं।

(२६) इक्के की जीत

ताश के खिलाड़ी दहले पर एका की जीत को सर्वोपरि स्वीकार करते हैं। मैं ताश के खेल का अनुमोदक न होने के कारण इक्का का अभिप्राय एकता के अर्थ में लेता हूं। शेष सब का परिणाम आर्यजाति की फूट है। केवल एक परमेश्वर की उपासना से ही इक्का = एकता संभव है। बस संसार में इक्का = एकता की ही जय है! एकता एक परमेश्वर की उपासना का फलरूप में परिणाम है। अनेकविध देवी-देवता की पूजा का परिणाम फूट है। इस सत्य को भागवत महापुराण में भी स्वीकार करते हुए लिखा है कि—

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।११
नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्र तारका न भूर्जलं खंश्वसनोऽथवाङ्मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं, विपश्चितोघ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया ।।१२

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिलेन कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३

भागवत पु० १०।८४।११-१३

जलमय तीर्थ नहीं होते, मट्टी और पत्थर के बने देवता नहीं होते । यह दीर्घकाल तक पूजने से भी पवित्र नहीं बनाते, साधु लोग दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं ।

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी, मन आदि की उपासना से पाप नष्ट नहीं होते । यह भेदकृत = फूट पैदा करते हैं । इन को उपासना का परिणाम फूट है । विद्वान् तो मुहूर्त भर की सेवा से प्रसन्न होकर पापनाश का उपाय बताते हैं ।

पाप नाश का उपाय बताना केवल विद्वानों के उपदेश से ही सम्भव है । जड़ देवी-देवताओं में यह शक्ति नहीं ।

वातपित्तकफात्मक शरीर में जिसकी आत्म बुद्धि हो, स्त्री आदि में जिसकी स्वबुद्धि हो, भूमि के बने पदार्थों में जिसकी उपास्य बुद्धि हो तथा जल में जिसकी तीर्थ बुद्धि हो वह कभी भी ज्ञानी पुरुषों में नहीं प्रत्युत वह तो गोखर है ।

यावन्न वेद सुहृदि सर्वभूतेष्वस्थितम् । भागवत ३।१९।२५

जब तक मनुष्य सर्वव्यापक परमात्मा को शुद्ध हृदय में नहीं प्राप्त करता तब तक उसकी मुक्ति नहीं हो सकती ।

यह भागवत पुराण के प्रमाण दिये हैं । देवी भागवत पुराण में मूर्ति-पूजा को आधुनिक और बुद्धकालीन बताते हुए लिखा है कि—

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले, न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वंचितास्ते ।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्चावहिता निर्मितानाम् ॥

देवी भागवत ५।१९

हे देवि ! दुष्टतर कलि काल आ जाने पर मनुष्य तेरी पूजा नहीं करते । पुराणचतुर धूर्तों से बनाये गये हरि, शंकर आदि देवों की सेवा में मनुष्य तत्पर हो गये हैं ।

देवीं संपूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः ।६२
पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः ।६३
त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः ।
तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम् ।६४

विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः ।६५

देवी भागवत ६।६।६२-६५

इन्द्र ने देवी की पूजा की जिसकी कृपा से शत्रु को मारा। अतः हीरे पन्नों से जटित देवी की मूर्ति इन्द्र ने स्थापित की। समस्त देवता तीन काल की मूर्तिपूजा करने लगे, तब से देवी ही देवताओं का कुल देवता माना जाने लगा और इन्द्र ने तीन लोक श्रेष्ठ विष्णु की पूजा भी की।

बुद्धकाल में ही इन्द्र के इस मूर्ति-पूजन का आख्यान है। क्योंकि लिखा है कि :—

वृत्रं छलेन विशस्त्रं मुनिभिश्च प्रतारितम्।
वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतंमतम्॥ देवी भागवत ६।७।२८

इन्द्र ने मुनियों से ठगे गये वृत्र को छल से मारा और वेद के प्रमाण को छोड़कर बुद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया।

अतः अनेकविध मूर्तिपूजा का परित्याग करते हुए इक्का = एक परमेश्वर की उपासना से सच्ची एकता प्राप्त कर वैदिक धर्म की जय ध्वनि से ही संसार का भला है।

(२८) भारतीय-संस्कृति

जड़ देवी देवों की पूजा भारतीय संस्कृति कदापि नहीं। इसकी साक्षी सनातन धर्म के प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् काशी विद्वद् परिषद् के पूर्व प्रधान म० म० पंडितराज श्री गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी अपनी भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक में दे रहे हैं। जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने प्रकाशित की है। श्री रामनाथ 'सुमन' साहित्य मन्त्री ने इस पुस्तक के प्रकाशकीय में लिखा है कि—

"पण्डित गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी भारतीय-संस्कृति के आदर्श प्रतिनिधि ही नहीं, उसके प्रामाणिक लेखक एवं गंभीर विद्वान् हैं। उनकी यह पुस्तक भारतीय-संस्कृति के सभी पहलुओं पर पूर्ण प्रकाश ही नहीं डालती प्रवेश करने की प्रेरणा भी देती है।"

इसी पुस्तक की भूमिका में प्रशंसा श्रीयुत कमलापति त्रिपाठी ने भी की है। इसी भारतीय संस्कृति में जड़ देवी-देवों के दर्शनों और पूजा का घोर खंडन करते हुए लिखा है कि—

"·········इसी से आज भारत में देवों की ही नहीं मनुष्यों की भी मूर्तियां मन्दिरों में पधरा कर तरह-तरह के बन्दिश करके मूर्ख हिन्दुओं,

स्त्रियों और गुंडों को (दखल) उनका नर्म हो गया है। आज स्वतंत्र भारत में इस कुकृत्य का निवारण अवश्य होना चाहिये। और इसका निवारण हम सनातन धर्मावलम्बी ही कर सकते हैं। यह हम लोग धर्म नहीं कर रहे हैं। स्वतंत्र भारत में यह पाप, छल, कपट, दम्भ नहीं था, अतः अब पुनः भारत के स्वतंत्र होने से पराधीनताकालीन यह पाखण्ड बिलकुल बंद होना चाहिये। घर में सास, ससुर, पति, सन्तान रोगी तक का अनादर कर हमारा स्त्री-समाज मन्दिर में अवश्य जायगा। घर में खाना नहीं। पोष्य वर्ग भूखों तड़प रहा है, पर हमारा सनातन धर्मी किसान कर्ज लेकर ग्रहण में काशी, मकर और कुंभ में प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन या नासिक अवश्य जायगा। यह धर्म नहीं धर्माभास है।······आज हिन्दू समाज इन्हीं पापों से जर्जरित हो रहा है। जिस धर्मध्वजिता का मनु ने निषेध किया है, उसी का सर्वत्र प्रचार है।"

—पृ० ९१

"मेले में गुंडों, बदमाशों को कुकृत्य करने के लिये मौका मिलता है। इन मेलों की दुर्दशा अवर्णनीय है। यहां बीमारी फैलती है, हैजा होता है, कुछ मरते हैं, कुछ भाग कर गांव में, देहातों में बीमारी लेते जाते हैं।······ठीक ही है। पाप का फल तो रोग शोक परिताप होता ही है। ऐसे ही हमारे समाज में धर्म के नाम पर अधर्म फैल रहे हैं। इन का जड़ मूल से विनाश होना चाहिये, तब भारतीय-संस्कृति का विशद स्वरूप दीख पड़ेगा।······उनकी मूर्ति बनाकर उस पर फल, पानी, पैसा फेंकना, यह तो भूसी कूटना है। ······भगवद् गीता की मूर्ति बना कर उसकी पूजा कोटि जन्म तक करने वाला क्या गीता से कुछ लाभ उठा पावेगा? क्या भारत माता की मूर्ति पूजने से भारत स्वतन्त्र हुआ है? शास्त्रों में तो कहा है कि—

मूर्खाणां काष्ठपाषाणे बुधस्यात्मनि देवता ।।

काष्ठपाषाण में तो मूर्खों के देव रहते हैं। पंडित का तो आत्मा ही ईश्वर है।"

भारतीय संस्कृति पृ० ९२, ९३

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमविज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडंबनम् ।।
यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः ।। भागवत पु०

जब मैं सभी भूतों में विद्यमान हूं तो उन भूतों को छोड़कर मूर्ति में मेरी पूजा करना तो विडम्बना मात्र है। जो सभी भूतों में रहने वाले मेरा अनादर

कर मूर्तिस्थान [illegible] में [illegible] पूजा करता है [illegible] भस्म में हवन करता है। इसी प्रकार [illegible] देव भावना [illegible] जिसमें [illegible] मूर्ति में ईश्वर पूजा का निषेध कर जीव [illegible] में ईश्वर की पूजा का विधान है। आजकल ईश्वर पूजा देव-दर्शन का कुछ अर्थ ही नहीं है निरर्थक [illegible] कूटना हो गया है।"

भारतीय संस्कृति पृ० ६३

"यों ही आजकल इष्टापूर्त का स्वरूप भी दूषित हो गया है। तालाव एवं मन्दिरों का जीर्णोद्धार नहीं न होकर नये-नये देव मन्दिर बनते चले जाते हैं। कच्ची उम्र के साधु संन्यासी बहुत हो रहे हैं। यह भ्रम है, पाप है। इन्हीं भावों का प्रदर्शन ऊपर कराया गया है। देखिये—

"एक ही परमात्मा का इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम, विवस्वान् प्रभृति नाम है।" पृ० ६४

"विवाह संस्कार युवावस्था में शिक्षा समाप्ति पर समावर्तन संस्कार कर के हुआ करे। यह एक प्रकार की सामाजिक प्रतिज्ञा करा कर दम्पति-वरण की विधि रखी जाय। जैसे—

कुल-देश-समाजानां सेवामेव करोम्यहम्।
आर्यमर्यादया त्रीणि शोधयिष्ये ऋणानि वै॥

मैं कुल, देश तथा समाज की सेवा के निमित्त एवं आर्य मर्यादा के अनुसार त्रिविध ऋणों के चुकाने की इच्छा से इस आश्रम में प्रवेश करता हूँ।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश होने पर गर्भाधानादि सोलह संस्कारों के लिये राज्य से नियमन रहे। इन संस्कारों के वैज्ञानिक रहस्य सभी को समझाए जायें। इनमें प्रधान संस्कार [illegible] पर सन्तानोत्पादन के सभी नियमों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो। राज्य की ओर से सन्तति शास्त्र (काम शास्त्र) के अध्ययन की व्यवस्था हो""समाज की व्यवस्था परिस्थिति को देख कर वैदिक [illegible] "[illegible] प्रथा०" इत्यादि समष्टिवाद के लिखे नियमों के आधार पर हो। [illegible] चाहे प्रार्थना गृह के नाम से चाहे उपासना-मन्दिर के नाम से [illegible] जो खूब विशाल हो, जिसके चारों ओर बाग हो, वहां हो [illegible] जन शिक्षालय के रूप में हमारा देव-मन्दिर होना चाहिये। आजकल के अधिकांश मन्दिर तो देव मन्दिर नहीं रह गये हैं। वे तो [illegible] के अड्डे हो गये हैं। तथा स्त्री, शूद्र और द्विज बन्धुओं [illegible] के आधार हो गये हैं।"

भारतीय संस्कृति पृ० १०२, १०३

पं० गोपाल शास्त्री ने अन्यत्र अपने लेख में पशु यज्ञों का खंडन करते हुए महर्षि दयानंद के वेद भाष्य को प्रामाणिक मानकर सायरा, उव्वट और महीधर के अर्थों का खंडन किया है। अतः यदि आर्यसमाज के आस्तिक से सनातन धर्म का इसी प्रकार से सुधार होता जाय तो यह घाटे का सौदा नहीं किन्तु इस की गति बहुत धीमी है। द्रुतगति से सुधार की आवश्यकता है। संसार में आर्यजाति ने जीवित रहना, आगे बढ़ना और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के जयघोष को साकार रूप देकर सारे संसार को आर्य बनाना है तो सनातन धर्म का सुधार शीघ्र-से-शीघ्र करने की आवश्यकता है।

पं० गोपाल शास्त्री ने भारतीय-संस्कृति में काम शास्त्र (सन्तति शास्त्र) की शिक्षा गृहस्थजनों के लिये आवश्यक मानी है। इस शिक्षा को पूर्ण पवित्रता के साथ आद्य शंकराचार्य और महर्षि दयानंद सरस्वती जैसे परम-योगी ही शास्त्रीय विधि के अनुसार बता सकते हैं। यह निर्विवाद है। यह सारा विवाद देव दर्शन के नाम से भारतीय-संस्कृति में वर्णित कर के पं० गोपाल शास्त्री ने इसका घोर खंडन किया है।

(२६) मूर्ति पूजा से फूट

अनेक देवतावाद का परिणाम फूट है। जिनके उपास्य अनेक होंगे। उनमें एकता की तलाश मृगमरीचिकावत् है। अनेक देवतावाद के कारण पुराणों में फूट का बीज बोया गया है। जो भारतवर्ष में सबसे अधिक है।

देवी भागवत में देवी को परमात्मा मानकर शेष सबकी निन्दा की है। भागवत का आराध्यदेव कृष्ण है। शिवपुराण में शिव की पूजा का विधान बताकर ब्रह्माजी की गत बनाई है। भविष्यपुराण में सूर्य की पूजा का विधान और ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसके दास बताये हैं।

शिवमहापुराण में लिखा है कि विष्णुजी बैठे हुए थे कि ब्रह्माजी आगये और कहने लगे कि:—

आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो हृप्तवच्चरेत्।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते॥

शिवपुराण विद्येश्वर सं० १ अ० ६।७

पूज्य गुरुदेव को आता देख कर भी जो अभिमानीवत् आचरण करे। उस मूढ़ द्रोही का प्रायश्चित होना चाहिये।

तब विष्णु जी ने कहा कि:—

सम्ताभिकमलाज्जातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा॥६॥

अप्रपश्यंतो मिथस्ते निषण्णा क्ष्मातले विभो।
आरमन्ति हि ये चान्ये ते दिवाकरमास्थिता ॥

भविष्य पु० ब्राह्मपर्व १ अ० १५३।११

एवं ब्रह्मादयो देवा पूजयित्वा दिवाकरम्।
शक्तिमन्तो बभूवुस्ते सर्वाविनां प्रवर्तने ॥

इन दोनों श्लोकों का भाव ऊपर लिख दिया है। इसी प्रकार भागवत पुराण में विष्णु जी की महिमा और शिव, ब्रह्मादि देवताओं को विष्णु की आज्ञा में चलने वाला कहा है :—

प्रोतानसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ भागवत ६।१५

शिवलिंग महिमा

शिवलिंग समुत्सृज्य योऽन्यां देवतामुपासते।
स राजा सहदेशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

लिंग पुराण उत्तर खंड अ० १२।३५

पार्थिवं शिवलिंगं च विप्रो यदि न पूजयेत्।
स याति नरकं घोरं शूलप्रोतं सुदारुणम् ।

शिवलिंग पुराण त्रि० अ० १६।२६

शिवलिंग को छोड़कर जो अन्य देवता की उपासना करता है वह राजा देश सहित रौरव नामक नरक में जाता है।

ब्राह्मण यदि पार्थिव शिवलिंग की पूजा न करे तो वह कांटों से सने घोर नरक में जाता है।

शिवलिंग निन्दा

*********सूर्य विप्रस्त कोत्तमः।
शिवलिंगार्चनरतः शिवविप्रस्तु निन्दितः ॥

भविष्य० मध्यम पर्व अ० ५।८८

सूर्य में उपासक विप्र ही उत्तम है। शिवलिंगार्चन रत शिव विप्र निंदित है।

इसी प्रकार पुराणों में यत्र तत्र सर्वत्र परस्पर देवी-देवताओं की फूट के परिणाम में उपासकों की फूट का वर्णन है।

दूराद्धि पंकजादस्पर्शनं वरम्।

(३०) एकेश्वरवाद

वेदों में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है और अनेकेश्वरवाद का खंडन भरा पड़ा है। अद्वय को घोरान्धकार का नरक का कारण बताया है।

नाकिरन्यद्वि शंसत सखायो मारिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषण सचासुते मुहुरुक्था च शंसत ।। ऋ० ८।१।१

हे मित्रों ! अन्य की उपासना मत करो तथा अन्य की स्तुति करके मत मरो। एक मात्र ऐश्वर्यशाली, सुखवर्षक प्रभु के साथ युक्त होकर बार २ उसकी महिमा का प्रशंसात्मक गान करो।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेवशुक्रंतद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।। यजु० ३२।१

वह ईश्वर अग्नि आदित्य, वायु, चंद्रमा, शुक, ब्रह्म आपः और प्रजापति नामों से प्रसिद्ध है। यह सब नाम परमात्मा के हैं। वह परमात्मा सबसे बड़ा है। प्रकाशस्वरूप है। अखंड है। गतिदायक, आह्लादक, शीघ्रकारी सर्वव्यापक और प्रजापति है उसकी उपासना करो।

सर्वे निमेषाजाज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत ।। यजु० ३२।२

सब निमेषादि कालावयव उस प्रकाशस्वरूप सर्वव्यापक प्रभु से प्रगट होते हैं उसको कोई भी ऊँचे नीचे, मध्य में नहीं पकड़ सकता क्योंकि निराकार होने से उस का अपना कोई अवयव नहीं अतः उसका ऊँच, नीच, मध्य भाग भी नहीं है।

नतस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ।। यजु० ३२।३

उस परमेश्वर की कोई मूर्ति नहीं है। जिसका नाम-नमन बहुत बड़ा यशदायक है। उसकी उपासना हिरण्यगर्भ आदि मन्त्रों से होती है।

यस्य नाम महद्यशः । यजु० ३२।३
तज्जपस्तदर्थभावनम् ।। योग

परमेश्वर का नाम जपन, उसका चिन्तन ही नाम स्मरण है। उसकी प्रतिमा—मूर्ति कोई नहीं है।

अतः काशी शास्त्रार्थ में ऋषि दयानंद जी महाराज ने यही वेद मन्त्र काशी विद्वन्मण्डली के सम्मुख समुपस्थित किया था। जिसका उत्तर काशी मण्डली से न बन पाया था। आज भी वही स्थिति है कि वेदों में ईश्वर की मूर्ति बनाकर पूजन विधान कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इस तथ्य को काशी विद्वत् परिषद् के प्रधान पं० गोपाल शास्त्री जी ने मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है जैसा कि उन्होंने अपनी भारतीय-संस्कृति नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप

से स्वीकार करते हुए मूर्ति पूजन का खंडन और ईश्वरोपासना का मण्डन किया है। अतः ऋषि दयानंद और आर्यसमाज को जीत स्पष्ट है।

काशी शास्त्रार्थ समारोह शताब्दी में काशी का कोई विद्वान् मूर्तिपूजा के समर्थन में नहीं आया। देहली से पं० माधवाचार्य वहाँ जाकर एक मन्त्र भी मूर्तिपूजा के पक्ष में उपस्थित न कर सके।

(३१) मूर्तिपूजा अवैदिक है

म० राधाकृष्ण जी आर्य समाज निवासी के आर्य गजट में प्रकाशित एक लेख पर डाक्टर आशुतोष (आचार्य) ने अखंड चेतना प्रवाहपत्र १९६६ के विशेषांक में मूर्तिपूजा को वेदों का अनादि सिद्धान्त सिद्ध करने का विफल प्रयास किया है। उनको विफलता इससे सिद्ध कि आपने इन शब्दों में स्वीकार कर ही लिया है—

"न तस्य प्रतिमा अस्ति" वेद का यह वचन सर्वथा सत्य है। कारण कि जो परमेश्वर निराकार, साकार, सर्वव्यापी, सर्व रचयिता है उसकी वास्तविक मूर्ति कौन बना सकता है ? कैसे बना सकता है ?

अखंड चेतना १९६६ पृ० ४३

इस संदर्भ में आपने तो गजब ही कर दिया कि ईश्वर को निराकार के साथ साकार मानकर भी लिख दिया कि उसकी मूर्ति कोई भी मनुष्य किसी प्रकार से नहीं बना सकता। तब तो मूर्तिपूजा का प्रश्न ही नहीं उठता। पुनः आपको इसका मोह क्यों है। आपके उद्धृत वेद मन्त्र में भी साकार शब्द नहीं है।

पुनः इस मोह को इसी संदर्भ में स्पष्ट करते हुए आपने लिखा है कि—

"साथ ही यह तथ्य भी उतना ही सत्य है कि जगत् की कोई भी वस्तु उसकी प्रतिमा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मूर्तिपूजा को वेद विरुद्ध कहने वाले विद्वानों की बुद्धि पर तरस आता है। जिस वेद में वनस्पति, औषधि, वृक्ष, पशु, पक्षी, भौतिक तत्व, शक्ति, इन्द्र, वरुण, कुबेर, विष्णु, शिवादि की उपासना की बात कही गई है। वह वेद मूर्तिपूजा का निषेध कैसे कर सकता है ? उपर्युक्त वस्तुएं एक प्रकार से प्रतिमा ही तो हैं।"

पृ० ४३ कालम २

डाक्टर आशुतोष महोदय ने वेद आर्य विधि से पढ़े होते तो इतना भ्रामक संदर्भ न लिखते। वेदों में ईश्वर को कहीं साकार नहीं लिखा, और न ही वेदों में जड़ पदार्थों की उपासना का वर्णन है। जड़ पदार्थों का सदुपयोग करना ही वेदाभिमत सिद्धान्त है। कार्यजगत् की उत्पत्ति कारण प्रकृति से ईश्वर

द्वारा हुई है। आप कारणरूप प्रकृति की सत्ता से इन्कार क्यों कर रहे हैं जो वेद प्रतिपादित है। घड़े को कुम्हार की प्रतिमा मानना यही आपका तर्क है ? जब कि घड़े का उपादान कारण मिट्टी जगत् में कर्ता से भिन्न मौजूद है। अतः वेद में भी ब्रह्म को प्राकृतिक पदार्थों और प्रकृति से सर्वथा भिन्न माना है। देखिये—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यांरताः ।। यजु० ४०।९

जो लोग कारण रूप प्रकृति की उपासना करते हैं वह घोरांधकार रूप नरक के भागी बनते हैं और जो लोग कार्य जगत् के प्राकृतिक पदार्थों के उपासक हैं वह उससे भी अधिक घोरतम अन्धकार के भागी बनते हैं।

यह वेद की आज्ञा है अतः वेद में जड़ पदार्थों की उपासना का स्पष्ट निषेध मौजूद है। आप सर्वशक्तिमान् के अर्थों को समझने में भूल कर रहे हैं। ईश्वर अपने गुणों के विरुद्ध कदापि कोई कार्य नहीं करता। अतः यह मिथ्या है कि—

"यदि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो उसमें अवतार लेने का अभाव उसे सर्वशक्तिमान् नहीं बनने देगा।" अवध चेतना पृ० ५३ कालम २

सर्वव्यापक परमेश्वर का एकदेशयुक्त शरीर में जन्म धारण करना असम्भव है और वदतोव्याघात का दोष भी है अतः वेद भगवान् ने युक्ति यही दी है कि—

स पर्यगाच्छु क्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
यजु० ४०।८

वह प्रसिद्ध परमात्मा सर्वव्यापक है, वह अपने कार्यों में किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता। वह शरीर रहित है अतः फोड़े-फुंसी तथा नस-नाड़ी के बन्धन से भी सर्वथा रहित है। वह शुद्ध स्वरूप है और पापों से युक्त कभी नहीं बन सकता। सर्वशक्तिमान् का अर्थ अपने गुणों के विरुद्ध कार्य करना नहीं है प्रत्युत अनुकूल कार्य करना है।

अतः आशुतोष महोदय आर्य विद्वानों की बुद्धि पर तरस न खायें प्रत्युत अपनी ही बुद्धि पर दया करें।

वेदों में इन्द्र मित्र, वरुणादि कोई जड़ देव उपास्य नहीं बताये गये वरन यह सब ईश्वर के भी गौणिक नाम हैं, जिसका प्रमाण स्वयं वेद में ही है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सः सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ० १।१६४।४६

परमेश्वर एक है। उसे विद्वान् लोग इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम-मातरिश्वा आदि नामों से याद करते हैं। यह सब उसके यौगिक नाम हैं। ईश्वर का निज नाम केवल ओ३म् है। यह अन्यत्र वेद में लिखा है।

अब आपके प्रत्येक तर्क का उत्तर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इन देवतासों का नाम ही आपने विज्ञान रखा है। याद रखिये कि विज्ञान का नाम दे देने से ही मूर्तिपूजा वैज्ञानिक कभी भी नहीं मानी जा सकती। आप माता-पिता आचार्य को मूर्तिमान् मानकर उनके ब्याज से बर्तमान जड़ों की उपासना को शास्त्रीय सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। यह भी आपके आशुतोष होने मात्र का ही परिणाम है।

स्पष्ट है कि माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की सेवा तो होनी ही चाहिये। क्योंकि वे इस सेवा के अधिकारी हैं। सेवा स्वीकार करते हैं। उससे हृष्ट-पुष्ट होते और प्रसन्न होकर हमारा भला करने में सामर्थ्यवान् होते हैं। किन्तु जड़ पदार्थों में प्रलय काल तक भी यह चैतन्य विशिष्ट गुण कदापि न आ सकेगा।

मनु धर्मशास्त्र में माता को पृथ्वी की मूर्ति, पिता को प्रजापति की मूर्ति और आचार्य को ज्ञान की मूर्ति कहकर उनकी सेवा का वर्णन किया है किन्तु जड़ पदार्थों का उपयोग तो उनके यथायोग्य प्रयोग में ही है। यही वेदों में बताये श्रौतब्य प्रसंगों का अभिप्राय है। आपने आगे लिखा है कि—

भोजन, वस्त्र, धन, धान्य, पुस्तक लेखनी आदि यह सभी वस्तुएं मूर्तियां ही तो हैं। भला इनकी पूजा कौन नहीं करता? ………ये अक्षर, शब्द, वाक्य, मन्त्र, श्लोक, कविता, उपदेश आदि सभी तो कागज पर स्याही की मूर्तियां हैं। फिर मूर्तिपूजा का निषेध करने वाले स्वयं क्यों इनकी उपासना करते हैं और दूसरों को भी ऐसा करने के लिये विवश क्यों करते हैं? क्यों चाहते हैं कि उनके शब्द या उपदेश—मूर्ति की उपासना अवश्य ही की जाय।

अवध चेतना पृ० ४२

श्री आशुतोष जी का विज्ञान सामने आ गया है। आप पुस्तिकादि को स्याही की मूर्ति मान रहे हैं तो आपके विचार से मिट्टी की मूर्तियां मानें जाकर ईश्वर की मूर्ति कहलाने के कदापि योग्य नहीं हैं। भोजन खाया जाता है,

वस्त्र पहने जाते हैं, धन धान्य व पदार्थों का क्रय-विक्रय होता है। इस प्रकार पुस्तक, लेखनी आदि सभी वस्तुओं के द्वारा पढ़ना-लिखना आदि व्यवहार होता है। किन्तु आंखें बंद करके और इन पर पुष्पादि चढ़ाकर इनके ध्यान से मोक्ष प्राप्ति और पाप क्षमा का सिद्धान्त कोई भी नहीं मानता जैसा कि आप मानते हैं। अतः आपकी उपमा उपमेय के विरुद्ध है।

अक्षर, शब्द, वाक्य, मन्त्र, श्लोक, कविता, उपदेश आदि सभी ज्ञान के साधन है। अक्षरादि केवल चिह्न मात्र हैं। चिह्न को देखकर चिह्नी का ज्ञान होता है। चिह्न की उपासना नहीं की जाती। सड़क के चौराहे पर नगरों की ओर जाने का संकेत स्तंभ उन नगरों के गन्तव्य स्थानों पर पहुँचने का ही संकेत करता है। नक्शा भूगोल की व्याख्या मात्र है वह स्वयं उपास्य नहीं है। केवल चिह्न हैं। जो भिन्न-भिन्न प्रकार के कल्पित किये जा सकते हैं। चिह्न की उपासना शास्त्रविहित नहीं है। न लिंगं धर्म कारणम्। चिह्न धर्म का कारण नहीं होता। अतः आपके देवताओं की कल्पित मूर्तियों से भी केवल चिह्न का काम लिया जाय तो आपत्तिजनक न होगा। जैसा कि महापुरुषों के चित्र उनके विशेष जीवन की ओर ही संकेत [illegible] जिनमें उपासना का भाव न होकर स्कूल के नक्शे की भांति केवल [illegible] होता है। आपकी कल्पित वर्तमान मूर्तिपूजा पद्धति के [illegible] मेल नहीं खाते। वस्तुतः यह सब उदाहरण आप[illegible] ही हैं। पुराणों में मूर्तियों के दर्शन का [illegible] प्राप्ति का सिद्धान्त मान कर [illegible] की फल प्राप्ति [illegible] ईर्ष्या-द्वेष और [illegible] उनकी मूर्तियों के [illegible] इस तथ्य पर आपको [illegible] विरोध है।

अन्त में आपकी [illegible] भी आवश्यक समझता हूँ। [illegible] है कि:—

'साथ ही एक [illegible] उपासना में चेतन [illegible] से मन क्यों नहीं [illegible] और [illegible]

है और जड़ की अपेक्षा चेतन अधिक सक्रिय एवं शक्तिशाली होता है। ऐसी दशा में जीव के प्रभाव से या उपासना से जड़ मूर्ति में चैतन्य का गुण आना चाहिये न कि चेतन जीव में जड़ता का। वास्तविकता यह है कि जब चेतन जीव अपनी उपासना द्वारा जड़ मूर्ति में चैतन्य की भावना भरता है तभी उस मूर्ति का प्रभाव जीव पर पड़ता है। उसके पहिले तो मूर्ति उसके लिये भी सामान्य जड़ पदार्थ ही रहती है।''''''''इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्व-व्यापक निराकार परमेश्वर की वास्तविक मूर्ति नहीं बन सकती। पर साथ ही यह भी सत्य है कि ऐसे परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप, चिन्तन, मनन अथवा उपासना मानव बुद्धि का व्यापार तो प्रतिमा, प्रतीक अथवा प्रत्यय का सहारा लिये बिना नहीं चल सकता। इस प्रखर सत्य की ओर से आँख मूंद लेना भयंकर भूल होगी।" अमर चेतना पृ० ४२, ४३

डाक्टर महानुभाव के लेख में यत्र तत्र सर्वत्र वदतो व्याघात दोष है। एक ओर तो आप सर्वव्यापक निराकार परमेश्वर की मूर्ति वास्तविक रूपेण बननी सर्वथा असंभव मानते हैं और मूर्ति को सामान्य जड़ पदार्थ ही लिख रहे हैं। पुनः उसमें चैतन्य की भावना भरना भी प्रतिपादित करते हैं। आज दिन तक कोई भी पुजारी जड़ मूर्ति में चैतन्यावस्था नहीं ला सका और न आगे कभी जड़ मूर्तियां चेतन होंगी। अन्यथा चोर इनको चोरी न कर सकते। इनके वस्त्र और गहने न उतार सकते। पुनः मूर्ति और उसकी पूजा मनो-वैज्ञानिक सत्य कैसे हुआ? विज्ञान का नाम ले लेने से क्या यह वैज्ञानिक तथ्य बन जायगा? जयपुर आदि नगरों में प्रायः मूर्तियां घड़ी और बनाई जाती हैं। उनके निर्माताओं को कोई भी वैज्ञानिक नहीं मानता। विज्ञान सिद्ध वस्तु का कार्य भी बहुत होता है किन्तु मूर्तियों का कुछ भी वैज्ञानिक उपयोग नहीं है। इनकी पूजा भी विज्ञान सिद्ध नहीं हैं। घंटी, घड़ियाल आदि बजाना, मूर्तियों को सुलाना, जगाना, सरदी-गरमी से बचाने के लिये सरद-गरम वस्त्र पहनाना, आभूषणों से सजाना, इनके विवाह संस्कार आदि सभी कार्य विज्ञान विरुद्ध हैं। यही पौराणिकपन है। वैदिकता इसमें लेश मात्र भी नहीं।

जड़ की उपासना से जड़ता आदि में भी क्या संदेह हो सकता है? जब कि महमूद गजनवी के थोड़े से आक्रान्ताओं ने सहस्रों-लक्षों मूर्तिपूजकों की बुद्धि को हर लिया और वह मूर्ति से रक्षा मानते रह कर भेड़-बकरी की भांति हांके गये और दो-दो पैसे में उनकी बहिन-बेटियों को गजनी के बाजारों में बेचा गया। औरंगजेब से त्रस्त होकर महादेव जी की मूर्ति अभी तक

काशी कूप से निकलने का नाम नहीं लेती। उसे पता भी नहीं कि भारत अब स्वतन्त्र और स्वाधीन हो गया है।

रही यह बात कि चेतन जीव की चेतनता का प्रभाव जड़ मूर्तियों पर पड़ना चाहिये तो उसमें भी कोई सन्देह नहीं कि वैदिक धर्म के चैतन्य प्रवक्त सिद्धान्तों से आर्यों की चेतना का प्रभाव जड़ मूर्ति लोगों में चैतन्य का संचार कर रहा है कि वे राष्ट्र रक्षा के लिये कृतसंकल्प हों। तभी तो काशी के विद्वानों ने यवन शुद्धि की घोषणा की थी। ऋषि दयानंद के वेद भाष्य को काशी विद्वत् परिषद् के प्रधान ने प्रामाणिक माना था और अब स्त्री जाति के वेद पढ़ने पढ़ाने के आर्ष वैदिक सिद्धान्त की परिपुष्टि काशी विद्वत्मंडली ने करदी दी। यह जड़ता और चेतनता का आलंकारिक आशय हो सकता है।

वर्तमान मूर्तिपूजा और विज्ञान परस्पर विरुद्ध बातें हैं। तथा पुराणों में भी मूर्तिपूजा का प्रबल खंडन मौजूद है। पुराणों के मूर्ति पूजा खंडन के प्रमाणों के आगे आशुतोष जी का मनोविज्ञान कभी नहीं ठहर सकेगा। मूर्ति पूजा ईश्वर प्राप्ति की सीढ़ी कदापि नहीं। यह एक खाई है जिसमें गिरकर आर्यजाति चकना चूर हो रही है। अतः म० राधाकृष्ण जी ने ठीक ही तो लिखा है कि:—

(१) बुत परस्तों का है यह दस्तूर निराला देखो।
खुद तराशा है मगर नाम खुदा रक्खा है॥

(२) मेरे हाथों के तराशे हुए पत्थर के सनम।
आज मन्दिर में भगवान् बने बैठे हैं॥

वेद में परमेश्वर का नाम स्वयंभू भी है। जिसका अभिप्राय है कि परमात्मा स्वयमेव है उसको किसी ने बनाया नहीं है। स्वयंभू के लिये फारसी में खुदा शब्द आता है। जिसे बनाया नहीं जाता वह स्वयमेव खुदबखुद है। अतः तराशे हुए बुत का नाम खुदा रखना खुदा की खुदाई का अपमान करना है।

डाक्टर आशातोश ने जो शेर लिखा है कि:—
बुत खिलाफत का है यह जलवा निराला देखो।
स्याह धब्बों को है वेद व कुर्आं बना डाला॥

इस शेर में वह मर्म कहाँ? इसके बदले में मैं प्रसिद्ध सनातन धर्मी नेता स्वर्गीय श्री राजनारायण अरमान के "अखबार आम" के अग्रिम पृष्ठ पर दिये गये एक शेर का लिखना पर्याप्त समझता हूँ। वह शेर निम्न है:—

गुनाहे मासियत क्या है ? खुदा से नाराजी करना।
बुतों को सर झुकाना, गिड़गिड़ाना. आजजी करना ॥

स्वर्गीय राजनारायण अरमान और पं० गोपाल शास्त्री दोनों सनातन धर्मी नेताओं ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध जय घोष करते हुए एक प्रकार से आर्य समाज के साथ एकीभूत होकर कहा कि:—

जो बोले सो अभय !
वैदिक धर्म की जय !!
जगत् गुरु महर्षि दयानंद
सरस्वती की जय !!!

॥ समाप्त ॥

समस्त पौराणिकों को शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज

आर्यसमाज निम्न विषयों पर विचार के लिए समस्त पौराणिक वर्गों को निमन्त्रण देता है—

१. *मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है।*
२. *अवतारवाद वेद सम्मत नहीं।*
३. *वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं कर्म से है।*

किसी भी आर्यसमाज के मंत्री से सम्पर्क कर नियम व समय निश्चित कर सकते हैं।

जैकमपुरा, गुड़गाँव —शांति प्रकाश (शास्त्रार्थ महारथी)

मुद्रक: जागती जोत प्रेस, एन-८ ग्रेटर कैलाश विक्रय केन्द्र, नई दिल्ली-४८